अंक : १२४
अक्तूबर-दिसंबर २०१३

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां
सुरेंद्र 'अंचल'
डॉ. अमिताभ शंकरराय चौधरी
सुरभि बेहेरा
इंदुमति सरकार
अशोक वशिष्ठ

सागर-सीपी
निर्मल शुक्ल

आमने-सामने
डॉ. सुरेंद्र गुप्त

१५ रुपये

अक्तूबर-दिसंबर २०१३

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
अशोक वशिष्ठ
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल "**कथाबिंब**" के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
Namit Saksena,
(M) 347-514-4222
Naresh Mittal.
(M) 845-304-2414
● **शिकागो संपर्क** ●
Tulika Saksena
(M) 224-875-0738

●"**कथाबिंब**" **वेबसाइट पर उपलब्ध** ●
www.kathabimb.com

e-mail : kathabimb@yahoo.com

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कहानियां

छोटा-सा एक हादसा ! – **सुरेंद्र "अंचल"** ७
आदाब – **डॉ. अमिताभ शंकरराय चौधरी** ११
भीगी हथेलियों का स्पर्श – **सुरभि बेहेरा** १५
धर्म-अधर्म – **इंदुमति सरकार** २५
संतो की लाड़ो ब्याह – **अशोक वशिष्ठ** २९

लघुकथाएं

सोच / **नरेंद्र कौर छाबड़ा** १०
एक लंबी ख़ामोशी / **नीरा सिन्हा** २७
अनुकरण / **आनंद बिल्थरे** ३३
मां, और वह रो पड़ा, भूख / **डॉ. सुरेंद्र गुप्त** ३८

ग़ज़लें / कविताएं / दोहे

दो ग़ज़लें / **नवीन माथुर "पांचोली"** २३
सबसे ख़ौफनाक (कविता) / **सुशांत सुप्रिय** २४
क्रमशः / **प्रभा मुजुमदार** २४
दोहे / **मधु प्रसाद** २८
एक दिन (कविता) / **देवेंद्र कुमार मिश्रा** २८
ग़ज़ल / **शरीफ कुरैशी** ४५

स्तंभ

"कुछ कही, कुछ अनकही" २
लेटर बॉक्स ४
"आमने-सामने" / **डॉ. सुरेंद्र गुप्त** ३५
"बाइस्कोप" (*सविता बजाज*) / **जलीस शरवानी** ४१
पुस्तक-समीक्षा ४९

आवरण चित्र : डॉ. अरविंद
स्वतंत्रता की देवी की मूर्ति (स्टैचू ऑफ लिबर्टी, अमेरिका). यह न्यूयॉर्क स्टेट में मैनहट्टन के दक्षिण ओर लिबर्टी आइलैंड पर स्थित है. अंतराष्ट्रीय मित्रता के प्रतीक के रूप में फ्रांस के नागरिकों ने इसे अमेरिका को भेंट किया था. इसका निर्माण सन १८७५ में प्रारंभ होकर १८८६ में पूरा हुआ.

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

"कथाबिंब" का यह १२४ वां अंक है. पत्रिका ने इस पूर्णांक के साथ प्रकाशन के ३४ वर्ष पूरे किये हैं. कहना न होगा कि वर्ष २००६ में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र से सेवानिवृत्ति के उपरांत पत्रिका के लिए कुछ अधिक समय दे पाना संभव हुआ है. किंतु, इस बीच, कम होने के बजाय व्यस्तताएं व ज़िम्मेदारियां कुछ बढ़ी ही हैं. हां, यह अवश्य है कि किस कार्य में कब या कितना समय लगाना है इसका निश्चयन अब दूसरों के हाथों में नहीं है.

अंक के अंतिम पृष्ठ पर, पिछले वर्षों की तरह ही *"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार"* के लिए अभिमत भेजने हेतु *"मत-पत्र"* दिया गया है. पाठकों से अनुरोध है कि वे शीघ्र अपने अभिमत हमें भेजें. आप चाहें तो पोस्टकार्ड का उपयोग कर सकते हैं या हमें इ-मेल भी कर सकते हैं. अगर वर्ष के किसी अंक की प्रति आपके पास नहीं है, तो कृपया भेजने हेतु हमें लिखें. अंकों को *"कथाबिंब"* की वेबसाइट पर भी देखा-पढ़ा जा सकता है. यह वेबसाइट निशुल्क है.

"कथाबिंब" परिवार की ओर से सभी लेखकों, पाठकों, विज्ञापनदाताओं व अन्य हितैषियों को नये साल की अशेष शुभकामनाएं. हमारा अगला अंक एक बृहद *"कहानी-विशेषांक"* (संयुक्तांक : १२५ व १२६) होगा. जाने-माने उपन्यासकार एवं कथाकार डॉ. रूपसिंह चंदेल इसके अतिथि संपादक हैं. देश-विदेश के लगभग ३० रचनाकारों की कहानियां, कहानी विधा से संबंधित कुछ विशिष्ठ आलेखों के साथ इस समकालीन हिंदी कहानी विशेषांक में संकलित रहेंगी.

●

इस अंक की कहानियों के बारे में कुछ छुट-पुट -- पहली कहानी *"छोटा-सा एक हादसा !"* (लेखक सुरेंद्र "अंचल") एक ऐसी दुर्घटना का बयान है जो हमारे देश में नित्य-प्रति घटती रहती है. चाहे स्कूल हों, अस्पताल की बिल्डिंग हों या पुल हों समय-असमय गिरते ही रहते हैं. जब ऊपर से नीचे पूरा तंत्र ही भ्रष्ट है तो इसमें नया क्या है ? फिर किसी गांव के किसी स्कूल की छत गिर जाने से एक बच्चे की मौत हो जाये तो क्या फ़र्क पड़ने वाला ? बड़ा हादसा होने से टल गया, केवल अपनी दादी मां का एकमात्र सहारा छह वर्ष का रामलाल मरा. डॉ. अमिताभ शंकरराय चौधरी की *"आदाब"* एक अन्य मार्मिक कहानी है. ओनम के अवसर पर निकलने वाली पुलिक्काली की झांकी में बहत्तर वर्षीय चथुन्नी छप्पन सालों से बाघ बनता आया है. पर अब उसका स्वास्थ्य पहले जैसा नहीं रहा. इसलिए इस साल इनाम भी कम मिला. पत्नी ने ताकीद की थी कि इस बार चूता छप्पर बनवाना है, सीधा घर आये. लेकिन घर पहुंचने से पहले चथुन्नी का उस्ताद से आदाब करने का मन हो आया. उस्ताद से मिलकर उसे लगा कि अपनी ज़रूरत से ज़्यादा उस्ताद की आंखों का इलाज ज़रूरी है. अगली कहानी की लेखिका सुरभि बेहेरा का नाम उड़िया साहित्य में जाना-पहचाना है. *"भीगी हथेलियों का स्पर्श"* कहानी में ज़रा सी बात को लेकर पति-पत्नी अलग-अलग शहरों में रहने लगते हैं. किंतु हर सप्ताह पिता पीयूष बेटे से मिलने आता है. बरसात के कारण एक रात पीयूष रुक जाता है और अंततः पति-पत्नी दोनों को अपनी ग़लती का अहसास होता है. *"धर्म-अधर्म"* की लेखिका इंदुमति सरकार *"कथाबिंब"* के पाठकों के लिए नया नाम है. धर्म, अधर्म की परिभाषा परिस्थिति सापेक्ष है. मगर कई बार सामाजिक दबाब के चलते अनिच्छा से कुछ लोग अधर्म की ओर बरबस ढकेल दिये जाते हैं. *"संतो की लाड़ो का ब्याह"* कहानी के माध्यम से *"कथाबिंब"* के संपादन सहयोगी अशोक वशिष्ठ एक बार फिर पाठकों से मुख़ातिब हैं. परिवर्तन की लहर से देश के ग्रामीण इलाके भी प्रभावित हो रहे हैं किंतु आम आदमी की मानसिकता में अपेक्षित बदलाव नहीं आ सका है. लड़की का पैदा होना आज भी अभिशाप माना जाता है. ख़ास तौर पर जब कोई परिवार आर्थिक रूप से पूरी तरह विपन्न हो और एक के बाद एक चार कन्याएं जनमी हों. संतो का बेरोज़गार पति दस वर्ष की अपनी लड़की का ज़बरदस्ती ब्याह करना चाहता है लेकिन संतो अड़ जाती है.

●

तीन महीनों की इस अवधि में देश का राजनीतिक माहौल काफ़ी तेज़ी से बदला है. पांच प्रांतों में संपन्न विधान सभा चुनावों के परिणाम चौंकाने वाले हैं. मिजोरम को छोड़कर शेष चारों राज्यों में कॉन्ग्रेस को मुंह की खानी पड़ी है. आम आदमी पार्टी (आप) के संयोजक अरविंद केजरीवाल ने शीला दीक्षित को हराया. ७० सीटों वाली विधान सभा में, दिल्ली में किसी पार्टी को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला. लेकिन भाजपा को सबसे अधिक, ३२ सीटें मिलीं, "आप" को २८ व कॉन्ग्रेस को मात्र आठ. मध्य प्रदेश, राजस्थान व छत्तीसगढ़ की तरह ही दिल्ली की जनता ने भी कॉन्ग्रेस को हराने के लिए मताधिकार का प्रयोग किया. यहां यह रेखांकित करना ज़रूरी है कि चुनाव आयोग द्वारा पूरी तरह निष्पक्षतापूर्ण चुनाव संपन्न कराये गये. किसी भी दल ने चुनावों में किसी गड़बड़ी का आरोप नहीं लगाया है. यह हमारे लोकतंत्र के लिए एक बहुत ही सुखद संकेत है.

मीडिया आज पूरी तरह केजरीवाल के साथ है. इसी मीडिया ने थोड़े दिन पहले तक अण्णा हज़ारे और केजरीवाल को "राइट ऑफ" कर दिया था. केजरीवाल, बाबा रामदेव और अण्णा हज़ारे के आंदोलनों की ही देन हैं. केजरीवाल ने रामलीला के मैदान से सभी संसद सदस्यों को हत्यारा तक कहा. उलटकर कॉन्ग्रेस ने उन्हें मैंगो मैन और सड़क छाप कहा और संसद में आने की चुनौती दे डाली. केजरीवाल ने जनाब सलमान खुर्शीद की पत्नी की एक संस्था को लेकर आरोप लगाये तो उन्हें धमकी दी गयी कि संसदीय क्षेत्र फ़र्रुख़ाबाद से लौटकर केजरीवाल दिखायें ! अण्णा नहीं चाहते थे कि शिष्य केजरीवाल सक्रिय राजनीति में जाये. उनके लिए अनशन और सत्याग्रह सत्ता-परिवर्तन का मार्ग है. लेकिन केजरीवाल और उनके अधिकांश साथियों ने चुनाव लड़ने का मन बनाया और इस तरह साल भर पहले "आप" का जन्म हुआ. इसे एक अच्छा संयोग कहा जाना चहिए कि "आप" को झाड़ू का चुनावचिन्ह मिला. सड़कों पर झाड़ू लगाते हुए, "आप" के कार्यकर्ता घर-घर जाकर प्रचार करने लगे कि भ्रष्टाचार को ख़तम करने के लिए, लोकपाल बिल लाने के लिए कॉन्ग्रेस को हराना ज़रूरी है. प्याज, टमाटर और आलू और रोज़मर्रा के उपयोग की अन्य चीज़ों के नित बढ़ते हुए दामों से त्रस्त जनता ने १२७ साल पुरानी कॉन्ग्रेस को दिल्ली से हटाने के पक्ष में अपना मत दिया. इसे विडंबना ही कहा जायेगा कि जिस पार्टी को सबसे अधिक, ३६ प्र. श. वोट मिले वह विपक्ष में बैठी है और पूरी तरह तहस-नहस हुई पार्टी पिछले दरवाज़े से घुस कर सत्ता का आनंद उठा रही है. सोचने-समझने वाले लोगों के मन में कई सवाल उठने चाहिए. क्यों दिल्ली के उप-राज्यपाल ने "आप" को सरकार बनाने के लिए इतना समय दिया ? स्पष्ट बहुमत न होने के कारण दिल्ली में राष्ट्रपति शासन लगना चाहिए था. अगर ऐसा होता भी तो यह पहली बार नहीं होता. छः महीने बाद बिना अतिरिक्त ख़र्चा करके हरियाणा और उड़ीसा की तरह ही, लोकसभा के चुनावों के साथ दिल्ली के चुनाव दोबारा कराये जा सकते थे. यदि टी. वी. में आयोजित रियल्टी शो की तरह एसएमएस मंगा कर सरकारें बन सकती हैं तो फिर चुनाव कराने की ज़रूरत क्या है ? यह सभी को मालूम है कि रियल्टी प्रोग्रामों से मोबाइल कंपनियां अकूत फ़ायदा उठाती हैं. इसका कहीं कोई रिकॉर्ड नहीं होता कि एक आदमी ने कितने मैसेज़ भेजे. सारा कुछ पैसों का खेल है. और यह भी कि क्या एसएमएस भेजने वाले लोग दिल्ली के सारे आम आदमियों का सही प्रतिनिधित्व करते हैं ? "आप" जो भ्रष्टाचार मिटाने का दम भरती है केवल गद्दी पाने के लिए इस तरह के हथकंडे अपनाये यह कहीं से भी न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता. कॉन्ग्रेस की मदद से सरकार बनाकर "आप" की साख कतई बढ़ी नहीं है. इसके पीछे क्या साज़िश है यह बहुत ही जल्दी सामने आ जायेगा. सरकारों के गिराने का कॉन्ग्रेस का पुराना रिकॉर्ड है.

●

समलैंगिक संबंधों को लेकर उच्चतम न्यायालय का निर्णय आज कल चर्चा में है. कहा जा रहा है कि हर किसी को अपनी तरह से जीने का अधिकार है. केंद्र की सरकार निर्णय के विरुद्ध अपील करने जा रही है. बहुत से नेताओं ने समलैंगिक संबंधों के पक्ष में अपनी राय दी है. इन लोगों से पूछना चाहिए कि यदि उनके स्वयं के परिवार में कोई ऐसा केस आता है तो उन्हें कैसा लगेगा ? मनुष्य सामाजिक प्राणी है, प्रत्येक समाज के कुछ नियम क़ायदे होते हैं जिनके दायरे में रह कर ही समाज आगे बढ़ता है, प्रगति करता है. यदि हम यह मान लें कि सबको अपनी मर्जी से ही रहने का अधिकार है तो क्यों भ्रूण हत्या, आत्महत्या, दया-मृत्यु, बलात्कार, औरत का सती होना, बहुपत्नी रखना आदि अपराध माने गये हैं. एक ओर तो हम एच आई वी के ख़तरों के प्रति सावधान रहने और एक ही पार्टनर के साथ संबंध रखने की हिदायत देते हैं तो अ-नैसर्गिक समलैंगिक संबंधों को छूट कैसे स्वीकृत हो सकती है. हाल ही में आस्ट्रेलिया में एक पाकिस्तानी नागरिक के वीसा का इसलिए नवीनीकरण नहीं किया गया कि उसके एक और पाकिस्तानी के साथ समलैंगिक संबंध थे. पाकिस्तान लौटने पर दोनों के साथ कैसा व्यवहार होगा यह कहना मुश्किल है क्योंकि वहां का क़ानून बहुत ही सख़्त है.

हमेशा यह कहा जाता है कि भारत का क़ानून अमीर ग़रीब दोनों के लिए बराबर है. किंतु जिस तरह से फ़िल्म स्टार संजय दत्त को इतने कम समय में दो-दो बार पैरोल मिली इतिहास में ऐसा कोई दूसरा उदाहरण नहीं है. दूसरी ओर, इतने सालों से जेल में रहने के बाद भी साध्वी प्रज्ञा ठाकुर का अब तक कोई अपराध साबित नहीं हो पाया और गंभीर रूप से बीमार होने के बाद भी उसे जमानत नहीं मिल पा रही है.

●

चलते-चलते...पिछले दिसंबर दिल्ली की बलात्कार की नृशंस घटना के बाद गठित समिति ने कई सुझाव दिये. एक सुझाव के अनुसार बस और कारों में पर्दे या काले शीशे लगाना अपराध करार किया गया. हर चौराहे पर पुलिस वाले बड़ी मुस्तैदी से कारें रोक-रोककर धूप का प्रभाव कम करने के लिए रंगीन फिल्म लगी कारों का चालान करते रोज़ दिखायी देते हैं. लेकिन बीते हुए एक साल में, देश में बलात्कार की घटनाएं कम होने के बजाये बढ़ी ही हैं!

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▶▶ जुलाई-सितंबर २०१३ के अंक में प्रकाशित 'कुछ कही, कुछ अनकही' पढ़कर मैं क़लम उठाने के लिए विवश हो गया. नरेंद्र मोदी के इस कथन का कि 'पहले शौचालय, फिर देवालय' का लोगों ने बेशक बहुत ग़लत अर्थ निकाला है. हम बचपन से ही पढ़ते आ रहे हैं कि जहां स्वच्छता होती है वहां ईश्वर का निवास होता है. मैं गत वर्ष सिंगापुर, मलेशिया और थाईलैंड गया था वहां के सार्वजनिक शौचालयों की स्वच्छता देखकर मेरी आंखें फटी की फटी रह गयीं. देश के नागरिक स्वस्थ रहें इसके लिए ज़रूरी है कि देश में सार्वजनिक शौचालयों की संख्या पर्याप्त हो तथा उनकी स्वच्छता को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए.

आपकी एक और बात ने मेरा दिल छू लिया कि कश्मीर में आंतकवादियों की घुसपैठ जारी है इस ओर किसी का ध्यान नहीं है, हम केवल वार्ताओं के जाल में उलझे हुए हैं जिसका अंजाम कुछ नहीं होता है. क्या हमारे लिए यह विडंबना की बात नहीं है कि आईपीएल में सेंचुरी बनानेवाले खिलाड़ी को एक करोड़ रुपए का इनाम दिया जाता है तो सीमा पर दुश्मन से लड़ते हुए शहीद होनेवाले जवान को मात्र डेढ़ लाख रुपए का मुआवज़ा मिलता है. ख़ैर, इस देश में सब चलता है.

सचिन तेंदुलकर को आनन-फानन में भारत रत्न प्रदान करनेवाली सरकार हॉकी के जादूगर ध्यानचंद को भूल जाती है. भारत और विश्व हॉकी में सबसे बेहतरीन खिलाड़ियों की श्रेणी में ध्यानचंद का नाम शामिल है. वे तीन बार ओलंपिक के स्वर्ण पदक जीतनेवाली भारतीय हॉकी टीम के सदस्य रहे हैं जिनमें १९२८ का एम्सटर्डम ओलंपिक, १९३२ का लॉर्ड एंजेल्स ओलंपिक एवं १९३६ का बर्लिन ओलंपिक शामिल हैं. कितने लोगों को मालूम है कि २९ अगस्त उनकी जन्म तिथि को भारत में राष्ट्रीय खेल दिवस के तौर पर मनाया जाता है. राष्ट्रीय खेल दिवस कब आता है और कब जाता है किसी को पता नहीं.

'कुछ कही, कही अनकही' के माध्यम से वैचारिक सामग्री परोसने के लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद.

ताराचंद मकसाने

बी-७९, रिज़र्व बैंक कॉलोनी, मराठा मंदिर मार्ग, मुंबई सेंट्रल, मुंबई- ४००००८.

▶▶ 'कथाबिंब' जुलाई-सितं. '१३, अंक में आपका संपादकीय इतना सारगर्भित, इतना सत्य तथा इतना स्वीकार-योग्य है कि मैं उसके अनुमोदन से स्वयं को रोक नहीं सका. आपने अपनी तीसरी टिप्पणी में लोक-सभा के आगामी चुनाव, राजीव गांधी एवं राहुल गांधी तथा मनमोहन सिंह के प्रसंगों के साथ मुज़फ़्फ़रनगर के सांप्रदायिक दंगे, नरेंद्र मोदी के भाषण तथा कश्मीर के मुद्दों को उठाया है. आपने इस प्रकार देश की राजनीतिक स्थिति पर कई प्रसंगों की चर्चा की है. लोकसभा का आगामी चुनाव काफ़ी हलचल भरा होगा और भय है कि इसमें कहीं घात-प्रतिघात की घटनाएं न बढ़ जायें. पटना में हुई नरेंद्र मोदी की सभा में सात विस्फोटों तथा छः लोगों की मृत्यु से हिंसक घटनाओं की शुरुआत हो गयी है. देश में एकता के अभाव में शत्रु-ताकतें सदैव लाभ उठाती रही हैं. कांग्रेस राहुल गांधी को प्रधानमंत्री बनाना चाहती है और मनमोहन सिंह भी उनके नीचे काम करने को तैयार हैं, परंतु मुझे पूरी आशंका है कि कांग्रेस को इतना बहुमत नहीं मिलेगा कि वह अपना प्रधानमंत्री बना सके. आपने कांग्रेस की तुष्टीकरण की नीति का प्रमाण दिया है. पर अब तो और भी प्रमाण हमारे सामने हैं. धर्म, जाति के आधार पर देश को बांटना ख़तरनाक है. हमारे प्रजातंत्र में वोट तथा सत्ता की राजनीति ने प्रजातंत्र को एकदम उलट दिया है. प्रजातंत्र, वास्तव का प्रजा का तंत्र न होकर नेता का, सत्ता का तंत्र है. आपने वेंकटेश्वरन तथा मनमोहन सिंह की अच्छी तुलना की है. 'नॉनसेन्स' प्रसंग के बाद सारा देश इस आशा में था कि भारत आते ही मनमोहन सिंह इस्तीफ़ा दे देंगे, परंतु वे तो एकदम झुक गये. अध्यादेश की इससे मिट्टी ख़राब हुई, पर इससे प्रधानमंत्री तथा कैबिनेट की शक्ति

का भी क्षरण हुआ. नरेंद्र मोदी पर चारों ओर से आक्रमण हो रहा है, पर वे अपने मिशन में आगे बढ़ रहे हैं. उनकी सभाओं में जिस प्रकार भीड़ उमड़ रही है, वह तो मोदी लहर का प्रमाण कहा जा सकता है. इस समय जनता एक सशक्त, जनप्रेमी एवं देशप्रेमी तथा निर्णय लेने में तत्पर प्रधानमंत्री चाहती है. मनमोहन सिंह की चुप्पी ने, भ्रष्टाचार को देखते हुए भी मौन बने रहने से भारतीय जनता में बेचैनी है. यह बेचैनी भी नरेंद्र मोदी के मार्ग को प्रशस्त कर रही है. मोदी की विजय होगी या नहीं मैं इसकी भविष्यवाणी नहीं कर सकता, परंतु यह सत्य है कि जनता उनमें अपना आगामी प्रधानमंत्री देख रही है और मोदी के कार्यक्रमों से प्रभावित हो रही है. देश की वर्तमान परिस्थितियां निश्चय ही नरेंद्र मोदी को प्रधानमंत्री के पद की ओर ले जा रही हैं.

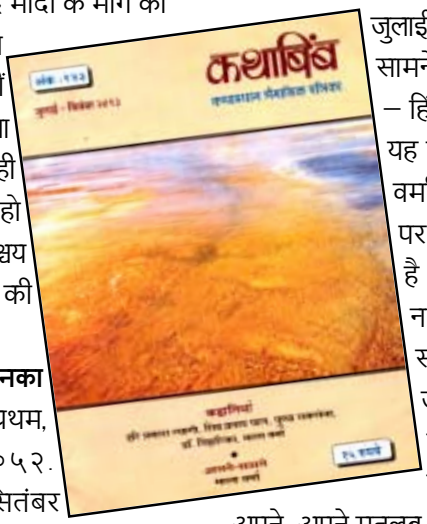

डॉ. कमल किशोर गोयनका
ए-९८, अशोक विहार, फेज़ प्रथम,
दिल्ली-११००५२.

▶▶ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर २०१३ अंक मिला. पत्रिका लगभग पढ़ ली है. हमेशा की तरह अपनी, सहजता और सरलता के साथ-साथ यह अंक भी उत्कृष्ट है.

जहां कहानियां अच्छी बन पड़ी हैं, वहीं लघुकथाओं का दबदबा लग रहा है. कविता, गीत और ग़ज़लें भी किसी से कम नहीं पड़ने को खड़ी हुई हैं. पत्रिका का स्तर यूं ही बना रहे और आपका संपादन ऐसे ही रहे इसी के लिए प्रार्थनारत.

डॉ. पूरन सिंह
२४८, बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर,
नयी दिल्ली-११०००८.

▶▶ 'कथाबिंब' का १२३ वां अंक मिला. प्रस्तुत अंक में हरिप्रकाश राठी की कहानी कुछ ठीक है, तथापि अन्य कहानियां भरती की और फ़ॉर्मूला कहानियां हैं. कुछ विशेष रूप से वे ध्यान नहीं खींचतीं. कुछ की तो लेखन शैली भी बहुत कमज़ोर लगती है. क्या इधर अच्छे लेखकों की अच्छी कहानियां नहीं आ रही हैं? पहले तो 'कथाबिंब' में बहुत अच्छी कहानियां छपती रही हैं.

आपका संपादकीय मात्र ऐसी चीज़ है, जिसे पढ़कर मन को बड़ी राहत मिलती है. अन्य किसी पत्रिका में ऐसे सार्थक संपादकीय मिलते नहीं हैं.

चंद्रमोहन प्रधान
आमगोला, मुजफ़्फ़रपुर-८४२००२

▶▶ 'कथाबिंब' के अंक नियमित मिल रहे हैं. जुलाई-सितंबर '१३ अंक सामने है. 'आमने-सामने' स्तंभ की अपनी विशेष भूमिका है – हिंदी साहित्य में मिथिलेश्वर से शुरू हुई यह सूची अब शायद ९३ क्रम पर माला वर्मा तक आ गयी है. मैं आठवें पायदान पर हूं. मुड़कर देखता हूं तो रोमांच होता है कि इस शृंखला के तीस से अधिक नाम, अपने लेखन के बल पर, आज साहित्य के सुपरिचित हस्ताक्षर माने जा सकते हैं – आपने एक पुस्तक भी इस बीच संकलित कर ही दी है. बदलते समय में जहां तमाम स्वनाम धन्य मंच अपने-अपने मतलब से तथाकथित स्थापितों की सूची जारी कर रहे हैं, एक तरह से घमासान 'सूची युद्ध' सा मचा हुआ है, आपने अपने मापदंड की गरिमा को पूर्वाग्रहों से मुक्त ही रखा. फलस्वरूप कई अज्ञात/अल्पज्ञात नाम उजागर हो पाये. बधाई.

माला वर्मा की कहानी और वक्तव्य, दोनों में पारिवारिक अंतरंगता प्रभावित करती है.

राजेश जैन
४०, करिश्मा अपार्टमेंट्स, २७ इंद्रप्रस्थ
एक्सटेंशन, दिल्ली-११००९२.

▶▶ 'कथाबिंब' के जुलाई-सितं.'१३ के लिए आभारी हूं. इस बहुचर्चित और लोकप्रिय पत्रिका को चौंतीस वर्ष से जिस मनोयोग के साथ आप प्रकाशित कर रहे हैं वह अपने आपमें इसकी उत्कृष्टता और सार्थकता का जीवंत प्रमाण हैं. कथा का 'बिंब' होते हुए भी पत्रिका में साहित्य की अन्य विधाओं को स्थान देकर समस्त साहित्यिक परिदृश्य पर प्रकाश डालने का उद्यम सराहनीय और अनुकरणीय है.

अंक की सभी रचनाएं सारगर्भित हैं तथा समकालीन स्थितियों को उजागर करती हैं. नये वर्ष की शुभकामनाएं स्वीकार करें.

मनोहर अभय
आर.एच.३, गोल्ड माइन, १३८-१४५,
सेक्टर-२, नेरुल (पू.), नवी मुंबई-४००७०६

▶▶ 'कथाबिंब' जब तब देखने-पढ़ने को मिल जाती है. अभी-अभी १२१वां अंक देखा. कुछ रचनाएं पढ़ भी गया. लघु पत्रिका निकालना अपने आपमें कितना कठिन है, इसका अनुभव मुझे स्वयं कुछ पत्रिकाएं निकालने के अलावा कई पत्रिकाओं के संपादन-प्रकाशन संबंधी अनेक ज़िम्मेदारियों से जुड़ने के नाते है. आपने तो ३४ साल लंबा जीवन 'कथाबिंब' को अब तक दिया है.

मेरे मन में आया था कि 'आमने-सामने' स्तंभ में छपे आत्मकथ्यों को पुस्तक रूप मिले. तीसरे आवरण पृष्ठ पर छपे विज्ञापन ने मेरे मन की इच्छा ने मूर्त रूप ले लिया है. यह जानकर अच्छा लगा.

बंधु कुशावर्ती
सी-१४२३/२, इंदिरानगर,
लखनऊ-२२६०१६.

▶▶ 'कथाबिंब' क़े जुलाई-सितंबर १३ के अंक के लिए धन्यवाद. 'कुछ कही, कुछ अनकही' की टिप्पणियों का सारांश : २५-२६ वर्ष पहले का शाहबानू केस, विदेश सचिव वेंकटेश्वरन का त्यागपत्र, कांग्रेस नेता माकन की राहुल गांधी के बोलते हुए चुप्पी साध लेना, अंक को बहुआयामी होना सिद्ध करता है.

कहानी 'पंद्रह अगस्त' (शिव प्रताप पाल) तथा 'इंसान होने का अपराध' (डॉ. निहारिका) की सरल भाषा और शैली, मुंशी प्रेमचंद की कुछ कहानियों की याद ताज़ा करती है. अन्य कहानियां भी अच्छी हैं जिनकी सुंदरता, भाव और अलग-अलग रुचियों के पाठकों के लिए उनका चयन अच्छा बन पड़ा है. प्रेम बहादुर कुलश्रेष्ठ विपिन की लघुकथा 'पत्र-प्रतिपत्र' के भाव जैसे को तैसा में मिलता है.

कथाबिंब का प्रसार पाठकों में बढ़ता रहे इस भावना के साथ.

कैलाश बिहारी श्रीवास्तव
डी-१४, शहजादे कोठी,
रायबरेली-२२९००१,

▶▶ जुलाई-सितंबर २०१३ का 'कथाबिंब' का अंक मिल गया है. आभार.

'कुछ कही, कुछ अनकही' आपका संपादकीय सब कुछ समेटे हुए है. इस बीच घटी महत्वपूर्ण घटनाओं, उनके प्रभाव का आकलन आप करते हैं. अपनी टिप्पणी देते हैं उस पर. यही इस बार भी पूर्णता सहित है. वरिष्ठ ग़ज़लकार श्री कृष्ण सुकुमार और सलीम अख़्तर की ग़ज़लें बहुत अच्छी हैं. माला वर्मा का आत्मकथ्य भी प्रभावी है. 'सागर-सीपी' स्तंभ इस बार पढ़ने को नहीं मिला है.

चंद्रसेन विराट
१२१, वैकुंठधाम कॉलोनी, आनंद बाजार के
पीछे, इंदौर-४५२०१८.

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी, हमें आपके पत्रों का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

– संपादक

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित साफ़-साफ़ लिखें. आजकल इलेक्ट्रॉनिक मनीऑर्डर का प्रचलन हो जाने के कारण मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित पूरी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

संपादक

कहानी

छोटा-सा एक हादसा!

✍ सुरेंद्र 'अंचल'

बड़ा हादसा होने से टल गया. केवल एक बालक ही मलबे में दब कर मरा — रामलाल!

इस गांव में कभी स्कूल के नाम पर अंग्रेज़ों के समय में एक ही बड़ा हॉल था. आज़ाद भारत में तीन चार नये कमरों का निर्माण हो गया. इस कमरे को बने लगभग चौथा साल ही है. कोई भूकंप नहीं आया किंतु छत तड़क गयी, टपकने लग गयी. न अतिवृष्टि हुई न कोई बाढ़ ही आयी, किंतु दीवारें धसकने लग गयीं. उनमें दरारें पड़ गयीं. अनेकों बार प्रशासन से फरियादें की गयीं किंतु बहरे अधिकारी बेचारे ठीक से सुन नहीं पाये और यह हादसा हो गया.

उस रात तीन चार घंटों तक झमाझम वर्षा हुई. बादल अभी भी मंडरा रहे हैं. पेड़ अभी भी टपक रहे हैं. पेड़ों पर बैठे गीले कौवे कर्कश राग में कांव-कांव कर शायद इस हादसे पर अफ़सोस जता रहे हैं. कमरों के पीछे के मैदान में घुटनों तक पानी भर गया है. मैंने यह सुना तो दौड़कर देखने लगा कि कौन से कमरे गिरे. ऐसे अनेक स्कूलों के कमरों का निर्माता इंज़ीनियर मैं ही था. मन में डर तो जागा किंतु मेरे ससुर पूर्व मेयर साहब जो अब लोकसभा का चुनाव लड़ रहे हैं, ने मुझे चुप रहने का आदेश दे दिया. अत: आश्वस्त भी था.

यों तो इस प्राथमिक विद्यालय के सभी कमरे कम ज़्यादा टपकते ही थे, किंतु पुराना सभा कक्ष अपेक्षाकृत सुरक्षित था. वर्षा होने पर ''टपूकड़े'' से बचने-बचाने के लिए पांचों कक्षाएं इसी में ठूंस दी जातीं. विविधता में एकता तो भारत का सांस्कृतिक गौरव रहा है.

हादसा तो होना ही था सो हुआ. ग़नीमत यह कि बड़ा हादसा होने से टल गया. केवल एक बालक ही मलबे के नीचे दब कर मरा — रामलाल!

संयोग ही था कि ज्यों ही छात्रों ने कक्षा कक्ष छोड़ा, पीछे की दीवार ढह पड़ी. छत नीचे लटक आयी. नन्हा रामलाल बस्ता जल्दी समेट नहीं पाया और दब गया.

समय की नदी बहती हुई आगे निकल गयी. नयी बात नौ दिनों की — विरोधी दलों ने योग गुरू रामदेव और अन्ना हज़ारे का मुद्दा पकड़ लिया. जांच कमेटी की रिपोर्ट भी आयी किंतु इलेक्शन की नयी तिथियों की घोषणा होने से दब गयी. आचार संहिता लागू हो गयी. तब जाकर मैं कुछ निश्चिंत हुआ.

रामलाल तीन बार चीखा, कराहा — फिर चुप्प. उसके साथी भी चीख़े-चिल्लाये. उनकी आर्त पुकारें बादलों की गर्जना को नकारती परिसर की सीमा लांघ कर पास पड़ोस के घरों तक पहुंचीं. कुछ अप्रिय होने का संदेश पाकर लोग दौड़ पड़े.

छात्र दौड़ कर देखने आये — कौन चीख़ा? कौन दबा?

शिक्षकों के होश उड़ गये. दौड़े आये — कौन चीख़ा? कौन दबा?

पास पड़ोस के लोग घबराकर दौड़े आये! क्या ढहा? कौन चीख़ा? कौन दबा? किसका लख़्ते जिगर मरा?

मालिक का लाख-लाख धन्यवाद कि बड़ा हादसा होने से बच गया. केवल एक बालक ही मलबे में दब कर मरा — रामलाल. बूढ़ी, विधवा ''धापूमां'' का एक मात्र सहारा. छह वर्ष का मासूम — ''रामूड़ा''.

भीड़ में कोई सरकार को कोसता तो कोई शिक्षकों को. कोई धापूमां के फूटे भाग्य पर अफ़सोस जताता.

हवाई तर्क–वितर्क में उलझी भीड़, पुलिस की गाड़ी आती देख खिसक ली.

पुलिस आयी, अधिकारी आये. इससे पूछा, उससे पूछा. अध्यापकों को डांटा. ट्रांसफर की धमकियां दीं. सस्पेंड कर देने का रौब गांठा. पंचनामा बनाया. एंबूलैंस आयी और लाश को पोस्टमार्टम के लिए ले भागी. हां, 'मिड-डे मील' की बनी मीठी थुल्ली अधिकारियों ने चखी ज़रूर.

अध्यापकगण बेचारे अपराध बोध से दबे ऑफ़िस में दुम दबाये बैठे रहे. जो भी आयेगा, उन्हें अवश्य डांटेगा. यों सरपंच से मंत्री तक सभी इन्हें चाबुक लिये रिंग मास्टर की

५ फरवरी १९३९,
एम. ए., बी.एड्.,

अब तक १२५ से अधिक रचनाएं
(कहानी, एकांकी, कविता, आलेख) प्रकाशित.
२४ पुस्तकें प्रकाशित. 'कथाबिंब' से कमलेश्वर कथा पुरस्कार से सम्मानित. राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर से तथा राजस्थानी भाषा अकादमी बीकानेर से पुरस्कृत व सम्मानित. गुजराती व मराठी में कई कहानियों का अनुवाद.

तरह दिखते हैं. इन्हें अफ़सोस था कि दीवार को ढहने से रोक क्यों नहीं पाये?

दूसरे दिन अख़बारों में रामलाल की फ़ोटू पहले पृष्ट पर छपी. टीवी पर पूरे दिन रामलाल को लोगों ने देखा. मैंने भी देखा किंतु ग़नीमत यह कि बड़ा हादसा नहीं हुआ. केवल एक ही बालक दबा — रामलाल!

धापूमां पंद्रह सोलह साल पहले ही विधवा हो गयी थी. उसका आदमी मकान बनाने वाला मिस्त्री था. मुंबई में निर्माणाधीन आठवीं मंज़िल के ढह जाने से दब गया. दो बच्चों को धापू के भरोसे छोड़ गया.

सरकार से कुछ पैसा मिला जिससे उसके बड़े बेटे कालू ने टैक्सी ख़रीद ली. मुंबई कमाने चला गया. जिससे धापूमां और रामलाल का गुज़ारा हो जाता था.

किंतु दुर्भाग्य, आतंकवादियों के हत्थे चढ़कर 'कालू' पिछले साल ही गोलियों से छलनी कर दिया गया.

वह मनहूस दिन! उस दिन सुबह ही पांच आदमी उसकी टैक्सी में बैठे. वे मुंबई के ताज होटल के सामने उतरे थे. दुर्भाग्य से उनकी बातें कालू ने सुन लीं. उनके थैलों में हथगोले और हथियार भी उसने देख लिये. उनको उतारकर किराया मांगा तो उन्होंने पांच सौ का नोट देकर कहा — ज़ा भाग फटाफट. कालू को अब पूरा विश्वास हो गया कि ये अच्छे लोग नहीं हैं. वह सीधा पास के पुलिस स्टेशन पहुंचा और अपनी शंका बता दी. कुछ ही घंटों बाद दावानल की तरह यह ख़बर फैल गयी कि होटल ताज और ओबेराय में भयंकर विस्फोट हो गया.

अफ़सोस! अख़बार वालों ने प्रशंसा में कालूराम की फ़ोटो छाप दी. दूसरी रात को ही कुछ लोग उसकी झुग्गी पर आ धमके और उसे गोलियों से भून दिया. झुग्गी में आग लगा दी. उसकी नवविवाहिता पत्नी कुल्हाड़ी लेकर कालू को बचाने दौड़ी तो वे उसे भी उठा कर ले भागे. आज तक पता नहीं चला.

कुछ टैक्सी चालक साथियों ने कालू की हत्या और उसकी पत्नी के अपहरण की रिपोर्ट लिखायी. कुछ दिनों बाद पुलिस ने अपनी तफ़तीश का निर्णय सुनाकर सबको चुप कर दिया — कालू की पत्नी ने अपने किसी टैक्सी चालक आशिक से मिल कर कालू को मरवा दिया और उसके साथ भाग गयी. मगर धापूमां ने इस निर्णय को आज तक नहीं स्वीकारा.

अब वह रामलाल के लिए जी रही थी. यदि रामलाल नहीं होता तो वह कभी की दम तोड़ चुकी होती. मां जो थी — औलाद पालने का हौसला रखती थी. आज उसका यह सहारा भी छिन गया.

विरोधी दलों ने जुलूस निकाले, जनता को आगाह किया कि आगामी चुनाव में ऐसी निकम्मी सरकार को उखाड़ फेंके. हमारी सरकार आयेगी तो कोई दीवार नहीं ढहेगी. कोई रामलाल नहीं दबेगा.

बदक़िस्मती से उस स्कूल का इंजीनियर भी मैं ही था. ठेकेदार मेरे फूफाजी लाला गिरधारी लाल जी थे. तब मेयर मेरे ससुर थे, जो अब लोकसभा के लिए चुनाव लड़ रहे हैं और शिक्षामंत्री इन ससुर साहब के छोटे भाई थे.

हां, मैं अब अधिशाषी अभियंता हूं. रामलाल की मौत का दुख आज भी मुझे कचोटता अवश्य है. लगता है, उसकी मौत में मेरा भी अपराध बनता है.

□

मुझे सब याद है.

तब स्कूल निर्माण के लिए बहुत बड़ा बजट आया हुआ था. टेंडर खोले जाने वाली कमेटी में, मैं भी था. तिथि से ठीक दो दिन पहले ठेकेदार गिरधारी लाल जी के फार्म हाउस पर भव्य पार्टी का आयोजन हुआ. बहाना बनाया गया था कि उनके बेटे की सगाई तय हुई है.

मैं हैरान, परेशान! समझ नहीं सका — अरे भाई

यह कब हुई सगाई? कहां हुई? बुआ ये कैसे हो गया?

बुआ ने टालू उत्तर दिया — अब, लड़की अच्छी मिल गयी तो बात तय कर ली.

— लड़की कितनी पढ़ी है? राहुल भैया एम. कॉम. हैं तो....?

— अरे, अभी ये बातें छोड़ रे पगले! पार्टी की तैयारी में लग!

और फूफा जी ने उत्तर दिया — जल्दी क्या है? सब पता चल जायेगा. तुमने भी तो इंज़ीनियरिंग कर ही ली है. नगरपालिका में नौकरी के लिए तिकड़म भिड़ाया है. तुझे भी पार्टी देनी ही पड़ेगी, हां! स्कूलों के निर्माण के लिए अच्छा सा बजट आया है. यह कमाने का मौका है. तुझे ख़ास मेहमानों की डट कर सेवा करनी है. सुना! मेवा खाना है तो सेवा करनी ही पड़ेगी.

पार्टी की तैयारियां हुईं. ख़ूब आवभगत हुई. मुझे सब कुछ अजीब सा लग रहा था. आख़िर इस पार्टी में इने-गिने लोग ही क्यों? यों कैसे मिल जायेंगे ठेके? शहर में एक से बढ़ कर एक घाघ ठेकेदार जो बैठे हैं.

पार्टी हुई....

बहस जाने कहां से शुरू हुई. अंग्रेज़ी शासन से, गांधीजी के सत्याग्रह पर होती हुई सीधी छलांग लगाकर अमेरिका के अश्वेत राष्ट्रपति ओबामा के भाग्य को सराह कर लाहौर में लंकाई क्रिकेट टीम पर हुए हमले का विश्लेषण करती हुई भारत नवनिर्माण को छूती हुई अन्ना हज़ारे के भ्रष्टाचार हटाओ की हुंकार तक जा पहुंची.

बहस में एक प्रधानाचार्य जी भी फंसे हुए थे. उन्हें देश के नैतिक पतन की अधिक चिंता सता रही थी. वे कम पी रहे थे मगर अधिक चढ़ गयी थी — देश की चिंता किसे है? भ्रष्टाचार चरम पर पहुंच गया है. भ्रष्टाचार और कालेधन के विरुद्ध जो माहौल अन्ना ने बनाया है, वह निश्चित ही एक अच्छा संकेत है — देश को शुद्ध सांस देने का.

जिस नैतिकता, प्रामाणिकता और सत्य आचरण पर हमारी संस्कृति जीती रही, सामाजिक व्यवस्था बनी रही, जीवन व्यवहार चलता रहा, वे सभी आज भ्रष्टाचार के आवरण में छिप गयी. और आवेश में आकर मेज़ पर मुक्का मार दिया.

वे भूल गये कि मेज़ पर कांच के गिलास रखे हैं, गिलासों में रंगीन पानी भरा है. बोतलें पड़ी हैं. सबकी

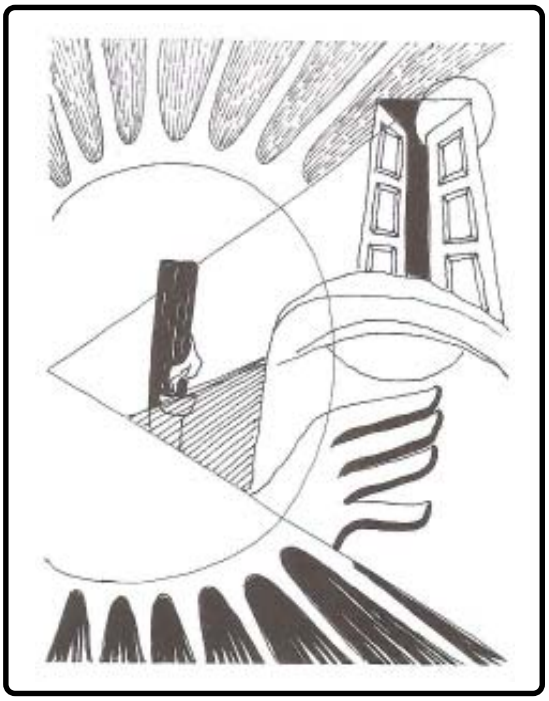

अनदेखी करते हुए मेज़ पर मुक्का मार दिया — आप तो मिनिस्टर भी रहे हैं - बताइए कहां दिखती है उन्नति? अरे ये बहुमंज़िला बिल्डिंगें, ये लंबी चौड़ी सड़कें बन जाने से पेट भर गया जनता का? जनता को रोटियां चाहिए रोटियां!

गिलास छलक गये. बोतलें लुढ़क गयीं. बहस रुक गयी. सबको फिर से व्यवस्थित किया गया — शिक्षा मंत्री ने तैश में आकर बहस को फिर से धार दे दी. आपको विकास क्यों नहीं दिख रहा है? इतने स्कूल, नरेगा, कर्जमाफ़ी, नारी शिक्षा, रेलों का बिछता जाल. अरे देश प्रगति के पथ पर चल नहीं दौड़ रहा है — दौड़....?

बहस को अब मूल मुद्दे की ओर गति देने का सही वक़्त देख कर फूफाजी ने मुझे आदेश दिया कि अब मैं इन सब मेहमानों को लिफ़ाफ़े थमाता चलूं. लिफ़ाफ़े पर नाम लिखे हैं. लिफ़ाफ़े बंटने लगे और बहस की रफ़्तार पर ब्रेक लग गया. लिफ़ाफ़ों में देश की तरक्की थी. गर्म-गर्म रोटियों की सोंधी सुवास थी. मेयर साहब के द्वारा प्रस्तावित विकास की गति को बढ़ाने का पेट्रोल था तो शिक्षामंत्री महोदय के लिए शैक्षिक प्रगति का मूलमंत्र था. मेरी इंज़ीनियर की नौकरी की गारंटी थी और था नये स्कूलों के लिए टेंडरों का निर्णय. उनमें ही छिपा था यह हादसा — रामलाल का

दुर्भाग्य और धापू मां का क्रंदन!

टेंडर खुले. लाला, गिरधारीलाल का टेंडर ''लोएस्ट'' था तो स्वीकृत हो गया. मुझे एक साथ ग्यारह नयी प्राथमिक शालाओं के निर्माण के लिए अभियंता बनना था — सो बन गया! किंतु सच कहता हूं मुझे तो केवल मुहर लगाकर अनुमोदन ही करना था.

ठेकेदार के मिस्त्रियों की मनमानी बढ़ती गयी तो मुझसे रहा नहीं गया.

मैंने मेयरसाहब से स्पष्ट बात कर लेना उचित समझा — सर! सामग्री का अनुपात बहुत ग़लत है. मिस्त्री मेरी बात मानते ही नहीं.

— क्या....? क्या मतलब है आपका...?

— नीवें ठीक से नहीं खुदी हैं सीमेंट की मात्रा बहुत कम है. कहीं बनते-बनते ही दीवारें ढह गयीं तो नुकसान तो हमारा ही है. — बदनामी भी होगी!

'हें....! तुम ठीक कहते हो! हां तो ठेकेदार साहब! बिल्डिंग बनते-बनते कोई नुक़सान होने का डर हो तो संभालो भाई!

ठेकेदार को मेरी बात अखरी तो अवश्य, आंखों में लाली उभरी भी, कुछ सोचा, फिर संभला — हां, ऐसा तो नहीं होना चाहिए. भई बिल्डिंग बनते-बनते ही ढह जाये, यह तो बुरी बात होगी. कम से कम चार पांच वर्ष तो सुरक्षित रहे. फिर तो अनेक बहाने हैं — भूकंप के झटके. भूमि की आंतरिक हलचल. भूमि धंसी! अपना इंज़ीनियर होने का यही तो लाभ है. थोड़ी सीमेंट की मात्रा बढ़ जायेगी. बस अपनी बातें बाहर नहीं जायें. ध्यान रहे!

और उन स्कूलों में एक स्कूल यह भी था. चार बरसातें तो निकाल ही लीं.

धापू मां के बेटे का मुआवज़ा एक लाख पास हुआ, उसकी वृद्धावस्था की पेंशन भी पास हो गयी. मगर बुढ़िया की हृदयगति फेल हो गयी.

साहित्यालोचन मंच
२/१५२, साकेत नगर,
ब्यावर, अजमेर (राजस्थान)
फोन : ७७३७२२३७९८

लघुकथा

सोच

नरेंद्रकौर छाबड़ा

बनवारीलाल तथा कांतिलाल पड़ोसी थे. दोनों के घरों के मध्य केवल एक दीवार थी. दोनों परिवारों का आपस में अच्छा प्रेमभाव था.

एक दिन दोनों के बच्चों के बीच झगड़ा हो गया. दस बारह साल की उम्र के बच्चे खेलते-खेलते बुरी तरह लड़ पड़े. रोते चीख़ते बच्चों को देख पहले तो उनकी मांएं भी एक दूसरे से उलझ पड़ीं फिर उनके पिता भी एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगे. मामला ज़्यादा गर्म हो गया गालीगलौज़ के साथ ही एक दूसरे के बच्चों की पिटाई भी कर दी गयी. उसके बाद से दोनों परिवारों के बीच संबंध कसैले हो गये. बातचीत बंद हो गयी. अगर बच्चों को कभी आपस में बात करते देखा तो दोनों की मांएं उन्हें झिड़क देतीं.

एक रात बनवारीलाल को दिल का ज़बरदस्त दौरा पड़ा. अगले दिन उनका निधन हो गया. घर में कुहराम मच गया. कांतिलाल व उनकी पत्नी भी वहां पहुंचे लेकिन सिर्फ़ दुनियादारी निभाने के लिए.

अगले महीने दिवाली थी. कांतिलाल के बच्चे दीए जलाने, पटाखे जलाने की तैयारियां कर रहे थे. तभी उनका ध्यान बनवारीलाल के घर की ओर गया. घुप्प अंधेरे में डूबा घर, उदास बैठे दोनों बच्चे. कांतिलाल के बच्चों ने दीप जलाये. पूरी कतार में सजाने के बाद जब उनकी मां भीतर गयीं दोनों बच्चों ने पांच सात दीए उठाये और उन्हें बनवारीलाल के घर के सामने सजा दिया. फिर उनके बच्चों को बोले — 'दीवाली अंधेरे को दूर करने का त्योहार है तुम्हारा घर अंधेरे में डूबा अच्छा नहीं लग रहा था. आओ हम मिलकर दिवाली मनाते हैं...' अंधेरे में भी दोनों की मांएं एक दूसरे को अवाक नज़रों से देख रही थीं.

१८४, सिंधी कालोनी, जालना रोड, औरंगाबाद-४३१००५. मो. ९३२५२६१०७९

कहानी

आदाब

✍ डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी

(यह कहानी समर्पित है पुलिक्काली के कलाकार बहत्तर साल के चथुन्नी को, जो पिछले छप्पन सालों से ओनम के दौरान 'बाघ' बनते आये हैं. हर साल.)

एक सुंदर से फ्रेमवाले आईने में चथुन्नी ख़ुद को देख रहा था. ओनम के मेले में सालों पहले उसने इसे ख़रीदा था, अपने लिए. उसके मन में एक हसरत थी कि बाघ का मेकअप पूरा हो जाने पर वह देखने में कैसा लगता है — एक बार अच्छी तरह अपने आईने में देखे. पुलिक्काली की झांकी के लिए लोगों को जहां बाघ या शेर के रूप में रंग लगाकर सजाया जाता है, वहां एक आईना होता तो है, मगर वहां पूरा संगमा यानी सारे अभिनेता खड़े रहते हैं. उस साल उसे मेले के बाद पुरस्कार में पूरे तीन हज़ार रुपये मिले थे. पुलिक्काली के बाद उस आईने को ख़रीद कर सड़क की रोशनी में ख़ुद को देखते-देखते वह मानो भाव विह्वल हो उठा था... पर आज...

चथुन्नी ने एक लंबी सांस छोड़ी, 'यह क्या हाल बना है इस शरीर का? इतने दुबले-पतले पेट के लिए पांच हज़ार तो दूर, दो-ढाई हज़ार मिल जायें वही किस्मत की बात होगी.'

चथुन्नी की बीबी इलांजी को दीन-दुनिया का हाल हक़ीकत अच्छी तरह मालूम था. इसीलिए उसने पहले से ही होशियार कर देना उचित समझा, ''तीन दिन से पुलिक्काली के स्वांग के लिए लगे हुए हो. ध्यान रहे इनाम में जो भी मिले घर ही लेकर आना. रास्ते में यार दोस्तों पर ख़र्च मत कर देना.''

चथुन्नी निकलने की तैयारी कर रहा था. पूरे बदन पर टेम्पारा लगाकर वार्निश से पीला एनामेल पेन्ट लगाया गया है. अब तो चमड़ी सूख रही है. रंग को सूखने में सात–आठ घंटे लग जाते हैं. पीले रंग के ऊपर काले रंग से बाघ की धारियां खिंचवायी गयी हैं. जोश कचापिल्ली ने कल दिन भर बैठकर उसके पेट के ऊपर बाघ का एक मुंह भी बना डाला है. बस, आज ओनम के चौथे दिन इन कलाकारों के मेकअप को आख़िरी बार देख सुन कर पुलिक्काली के स्वांग के लिए भेज देना है. बीबी की हिदायत के जबाब में वह हूं... हूं कर रहा था.

इलांजी नाराज़ हो गयी, ''क्या तबसे हूं... हूं कर रहे हो? कुटिया की छाजन का हाल देखा है? बारिश हो तो पूरब की ओर से घर के अंदर पानी चूने लगता है. कुछ रुपये मिले तो इस बार पूरे छप्पर को बदलना है.''

कई साल पहले तक अभिनेता मुंह के ऊपर भी पेंट लगाते थे. आज कल मुखौटे का इस्तेमाल करने लगे हैं. मुंह के ऊपर रंग लगाने से बात करने में भी दिक्कत होती थी. हाथ में बाघ के मुखौटे को उठाते हुए चथुन्नी ने बस इतना कहा, ''हां... हां, वही होगा. तू तो कोच्चि की पटरानी की तरह हुकम कर रही है. तीन दिन से रंग लगाकर मेहनत करूं मैं, और जरा पीने-पिलाने की भी छूट नहीं देगी?''

इलांजी भड़क गयी, ''तूने अपने को क्या सोच रखा है? कोच्चि का महाराज? घर की छत से चूता है पानी, बालम मांगे अंगूर की रानी. वाह!''

चथुन्नी हंसते हुए घर से निकल पड़ा.

कहते हैं दो सौ साल पहले कोच्चि का महाराज राजवर्मा सकथन थंपूरन ने ओनम के उत्सव के लिए इस स्वांग की शुरुआत की थी. मलयालम में पुलि का अर्थ है तेंदुआ, और काली यानी नाटक. तो पुलिक्काली का मतलब है बाघ, सिंह या तेंदुए आदि के भेस में नाटक. उन्हीं दिनों अंग्रेज़ी फ़ौज के साथ कई तमिल मुसलिम सैनिक त्रिशूर आये हुए थे. वे अपने मुहर्रम के जुलूस निकालते थे. तो

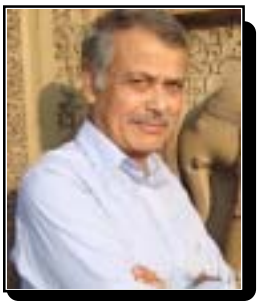

१८ जनवरी १९५५;
एम. बी. बी. एस. (बी. एच. यू.)

: लेखन :

हिंदी एवं बांग्ला पत्र पत्रिकाओं में बच्चों एवं बड़ों की कहानियां, कविताएं, नाटक तथा आलेख प्रकाशित. कुछ कहानियां ओड़िया एवं गुजराती में अनूदित.

: प्रकाशन :

गणित के पंख (बाल लघु उपन्यास). पुस्तकों में संकलित : सी. बी. टी. के संकलन एवं हिंदी पाठ्य पुस्तक में (सी. बी. एस. ई.).

: पुरस्कार :

सी. बी. टी., राष्ट्रीय सांप्रदायिक सदभाव प्रतिष्ठान (गृहमंत्रालय) तथा 'प्राची' पत्रिका द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में कहानियां पुरस्कृत. बांग्ला पत्रिकाओं द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं एवं काव्य संग्रहों में स्थान.

: संप्रति :

निजी चिकित्सक

राजा के कहने पर उसी तर्ज़ पर उन्होंने पुलिक्काली की शुरुआत की थी.

सुबह से ही इक्के-दुक्के लोगों की भीड़ त्रिशूर के स्वराज मोड़, पैलेस रोड और करुणाकरण नांबियार रोड के इर्द-गिर्द इकट्ठी होने लगी. क्योंकि इन्हीं जगहों से पुलिक्काली की झांकी सबसे अच्छी तरह देखी जा सकती है. ओनम के अवसर पर दुकानें भी सजी हुई हैं. जगह-जगह फुटपाथ के ऊपर ठेलों पर लंबी-लंबी मिर्च की पकौड़ियां, केले की भाजी या गन्ने का सुनहरा रस बिक रहा है.

पुराण की कथानुसार यहां के राजा महाबली ने एक बार स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तीनों लोकों पर अपना अधिकार जमा लिया. देवता भयभीत होकर विष्णु की शरण में पहुंचे, ''हमें हमारा स्वर्ग वापस दिला दो, प्रभु.'' दानशील के रूप में महाबली की महती ख्याति थी. सो विष्णु एक छोटे वामन का रूप धर कर केरल के राजा महाबली के पास भिक्षा लेने पहुंचे, ''तीन क़दम भर चलने के लिए जितनी भूमि की ज़रूरत होती है, बस उतनी-सी ज़मीन मुझे दान में दे दो.''

महाबली ने हंस कर कहा, ''तथास्तु.''

बस और क्या था? विष्णु ने अपना आकार इतना विशाल बना लिया कि उनका मस्तक आकाश को छूने लगा. अपने दाहिने पैर को आगे बढ़ाकर उन्होंने समूचे स्वर्ग पर अपना अधिकार जमा लिया, और बायें पैर से पूरे मर्त्य लोक पर. फिर वह पूछने लगा, ''राजा, अब मैं तीसरा क़दम कहां रखूं?''

महाबली ने हंसते हुए अपना सिर नवाया, ''प्रभु, मेरे मस्तक पर....''

विष्णु ने भी मुस्कुराते हुए अपने चरण से उसके सर पर धक्का मारा, ''तो जा. तू पाताल में ही जाकर रह.''

राजा तो चला गया पाताल लोक में और तबसे हर साल एक बार अपनी प्रजा से मिलने चिंगम यानी अगस्त-सितंबर के महीने में वापस आते हैं. उन्हीं के स्वागत के लिए केरलवासी अथम से दस दिन तक ओनम का उत्सव मनाते हैं. अपने-अपने घरों के सामने रंगोली सजाते हैं. ओनासाद्या या थीरुओनम के अवसर पर केले के पत्तों पर बारह-तेरह किस्म के भोजन परोसे जाते हैं.

भड़क्कुनाथन शिवमंदिर के मुख्यद्वार से ही पुलिक्काली का जुलूस निकलता है. उसके सामने जो नादुविलाल का गणेश मंदिर है, उसी के अहाते में सारे कलाकार बाघ, शेर या भालू के स्वांग बनाकर हाज़िर हो गये. पहले ज़माने में केवल रंगों का ही इस्तेमाल होता था. पर आजकल तो मुखौटे, लंबे-लंबे नकली दांत और झबड़े बालों से भी मेकअप होने लगे हैं. पहले ये बातें न थीं.

कचापिल्ली जैसे और कई पेंटर अपने-अपने कलाकारों के मेकअप को फ़ाइनल टच दे रहे थे. दोपहर तक संगमा यानी कलाकारों के झुंड नादुविलाल मंदिर से भड़क्कुनाथन मंदिर की ओर चल पड़े. नाद, नाल, मृदंगम और नादस्वरम् बजने लगे. पंचानन को प्रणाम कर संगमा सड़क पर निकल पड़ा....

स्वराज मोड़ से लेकर नांबियार रोड और आगे के

कई किलोमीटर रास्ता तय करने के बाद जब पुलिक्काली की झांकी ख़त्म हो गयी तो दोपहर ढलने लगी थी. लोग इधर-उधर तितर-बितर होने लगे थे. चथुन्नी के मोहल्ले के पास रहनेवाले एक दूसरे कलाकार नांबीसान ने आकर उसका हाथ थाम लिया, ''सीधे घर जायेगा कि मन्नूर की दुकान होकर चलेगा?''

मन्नूर की दुकान में ताड़ी बिकती है. चथुन्नी ने मुस्कुराकर कहा, ''पहले इनाम तो हाथ आने दे. देखें कितना मिलता है. घर से चलते समय इलांजी ने बार-बार होशियार कर दिया था कि सीधे घर वापस आये. इधर-उधर फालतू ख़र्च न करे. इस बार छाजन की मरम्मत नहीं की गयी तो चिंगम की बारिश ख़त्म होते-होते छत भी ढह जायेगी.''

सारे कलाकार बाघ, तेंदुए और शेर बने इधर-उधर खड़े थे. कोई चाय पी रहा था, तो कोई बीड़ी सुलगा रहा था. अपने-अपने गांव, मुहल्ले से पुलिक्काली की झांकी तैयार करवानेवाले मुखिया लोग इनको इनके इनाम बांटने लगे. चथुन्नी को साढ़े तीन हज़ार मिले. जिसकी तोंद जितनी ज़्यादा निकली होती है, उसे उतना ज़्यादा मिलता है. साथ ही मेकअप की बात तो है ही. दो चार लोगों को तो पांच-पांच हज़ार भी मिले. चथुन्नी ने हल्की मुस्कुराहट के साथ अपने पेट को सहलाते हुए नांबीसान से कहा, ''चल, यही काफ़ी है. साल भर अगर खाना पीना ठीक से न मिला तो अगले साल इतना भी नहीं मिलेगा.''

चथुन्नी त्रिशूर के ख़्वाब महल बिल्डर के यहां राजगीर का काम करता है. दूसरों के लिए बड़े-बड़े फ़्लैट और इमारत खड़ी करने में उसे पता ही न चला कि कब उसकी छत भी रिसने लगी है.

पुलिक्काली के लिए बदन पर रंग चढ़ाना जितना मुश्किल काम है, फिर उस रंग को छुड़ाना भी कम पापड़ बेलना नहीं है. सारे कलाकार सड़क किनारे एक नल के पास बैठकर मिट्टी के तेल से एक दूसरे के बदन से रंग छुड़वा रहे थे. यहीं से आगे जाकर यह सड़क दायें-बायें दो भागों में बंट कर नांबीसान और चथुन्नी के घर तक पहुंचेगी. नांबिसान ने फिर से पूछा, ''क्यों क्या ख़्याल है? मन्नूर की दुकान होकर घर चलेंगे?''

अचानक चथुन्नी को एक दूसरी ही बात याद आ गयी. उन दोनों के घरों के लिए सड़क जहां दो में बंट जाती है, उसके पहले ही तो तिरंगलूर मस्ज़िद की बगल से जो गली गयी है - उसी में रहता है उसका उस्ताद अल्लम बशीर. उसे ध्यान आया — कितने दिन हो गये उस्ताद से मिले हुए. पहले पहल बशीर ही उसे पुलिक्काली के स्वांग के लिए ले आया था. उसी ने सिखाया था – बाघ की चाल कैसी होती है. जनता के मनोरंजन के लिए कैसे बीच-बीच में दहाड़ लगाकर छलांग लगानी चाहिए. उम्र के कारण दो-तीन साल से बशीर पुलिक्काली में हिस्सा ले नहीं पा रहा है. वरना राजा राम वर्मा के ज़माने में तो त्रिशूर में अंग्रेज़ों के साथ आये मुसलमानों ने ही इसकी शुरुआत की थी. तबसे आज तक कितने लोगों का यही पुश्तैनी काम है. ओनम के अवसर पर लोग इन्हीं के दरवाज़े आते हैं, ''चलो, हमारे कलाकारों को सजा दो. सिखा दो.''

क्वांर के महीने में जैसे सफ़ेद बादलों की टोली आकाश में तैरती रहती है, उसी तरह चथुन्नी के मन में यादों के बादल घिरने लगे. कैसे बशीर उसे सीना तान कर मस्त अदाकारी के साथ चलना सिखाता था. उसने नांबिसान से कहा, ''तू चल अपने घर. मैं आज अल्लम उस्ताद से मिलकर घर पहुंचूंगा.''

''तो अपने बदन पर से रंग तो छुड़वा ले.''

''नहीं. रहने दे. आज इसी तरह बाघ बनकर ही उस्ताद को आदाब कह आऊंगा.''

तिरंगलूर मस्जिद की बगलवाली गली में घुसते ही मोहल्ले के लड़के बच्चे हो-हल्ला करने लगे, ''देखो, देखो, हमारी गल्ली में शेर घुस आया है.''

साथ ही गली के कुत्ते भी लगे भौंकने.

मगर वह जंगल के घास के मैदानों को पार करने वाले बाघ की मस्त चाल से आगे बढ़ता जा रहा था. अल्लम के दरवाज़े पर दस्तक देते ही भीतर से आवाज़ आयी, ''कौन? कौन है? दरवाज़ा खुला है. अंदर आ जाओ.''

अंदर पहुंचते ही उसने देखा आंगन के किनारे एक छोटी खटिया पर अल्लम मियां बैठे हुए हैं. शाम के धुंधलके में सब कुछ कोहरा–कोहरा सा लग रहा था. बशीर ने सिर उठाकर पूछा, ''कौन हो म्यां? नज़दीक तो आओ.''

''मैं हूं.'' चथुन्नी उसके पास पहुंचा, ''चथुन्नी.''

''या अल्लाह! अरे तुझे जी भर के देख लेने दे.'' बशीर अपने सर को इधर से उधर घुमाने लगा और उंगलियों से छू-छूकर चथुन्नी के बदन को टटोलने लगा.

पहले तो चथुन्नी कुछ सकुचाने लगा. फिर मुस्कुराकर पूछा, ''क्या हुआ उस्ताद? ऐसे क्या देख रहे हो?''

''अरे मेरी नज़र तो मुझे दगा दे गयी. इसीलिए तो उंगलियों से छू-छूकर तेरा अहसास अपने सीने में भर ले रहा हूं. आज तो मैं अपनी इन उंगलियों से ही देख ले रहा हूं — तू कैसा बाघ बना है? कब से तमन्ना थी कि अपनी आंखों से जी भर कर देख लूं मेरा शेर बाघ बनकर लगता कैसा है?'' फिर वह चिल्लाकर अपनी बीबी को बुलाने लगा, ''अजी सलीमा, देख तो ले कौन आया है. मेरा यार, मेरा शागिर्द चथुन्नी.''

सलीमा बाहर निकल आयी, ''कहो कैसे हो? आज पुलिक्काली में गये थे?''

''और क्या? ऐसे ही बाघ बनकर तेरे दरवाज़े पर खड़ा है?'' बशीर हंसने लगा, ''जा–जा जरा काफ़ी बना दे. इतने दिनों बाद आज यार आया है...''

चथुन्नी ने धीरे से पूछा, ''भाभी, उस्ताद की आंखों की रोशनी कुछ कम हो गयी है क्या?''

''अब क्या बतायें? मोतियाबिंद का ऑपरेशन करवाना है. मगर उसके लिए भी तो रुपये चाहिए. पुलिक्काली का बाघ आज अंधा होकर बैठा है.''

''अरे यह क्या बक रही है? जा पहले काफ़ी बना ला.'' बशीर ठहाका लगाने लगा.

लेकिन सलीमा की यह बात चथुन्नी के दिल में चुभ गयी. वह सोचने लगा — क्या मैं अपने उस्ताद के लिए कुछ नहीं कर सकता? क्यों नहीं? मेरी अंटी में भी तो साढ़े तीन हज़ार बंधे हैं. मगर फिर इलांजी? वह तो बरस पड़ेगी. फिर छत का क्या होगा? ओह!

काफ़ी पीते-पीते भी उसके मन में यही उधेड़ बुन चल रही थी. क्या करूं? उस्ताद को रुपये दे देता हूं तो घर में तो तूफ़ान खड़ा हो जायेगा. जबाब क्या दूंगा?

काफ़ी पीकर वह उठ खड़ा हुआ. ''अच्छा उस्ताद चलता हूं.''

''बहुत अच्छा लगा, बेटा. फिर कभी ज़रूर आना. अब तो मेरी दुनिया इन दरवाज़ों के पीछे सिमट कर रह गयी है.''

चथुन्नी को पता भी न चला कि वह क्या कर रहा है. चलते-चलते अचानक उसने अपनी अंटी से रुपये निकालकर सलीमा के हाथों में थमा दिये, ''इन्हीं रुपयों से उस्ताद की आंखों का इलाज़ करवा लेना. अगले साल मैं फिर आऊंगा, तो उस्ताद अपनी आंखों से देखें कि मैं कैसा बाघ बनता हूं.''

बशीर अपने दोनों हाथों को झटकने लगा, ''नहीं-नहीं चथुन्नी. यह क्या कर रहा है? अपने रुपये वापस लेता जा. बाघ अपना शिकार ख़ुद करता है. मैं तेरे इनाम के रुपयों से अपना ऑपरेशन करवाऊं?''

''उस्ताद ना क्यों कर रहे हो? यह तो तुम्हारे लिए मेरी गुरू दक्षिणा है. लो, रख लो. अगले साल अपने इस बाघ को अपनी आंखों से अच्छी तरह देख लेना. चलता हूं. आदाब!''

''मगर तुम्हारी बीबी तो इनाम के इन रुपयों के लिए आस जोये बैठी होगी.'' सलीमा ख़ुद औरत है. वह जानती है चथुन्नी की गृहस्थी में कौन सा बवंडर उठ खड़ा होगा.

''मैं अल्लम बशीर का बाघ हूं. इतनी सी बात को संभाल न सकूंगा? उसे मना लूंगा. घबड़ाना मत.'' वह मन ही मन सोचने लगा इलांजी को बतायेगा कि बाघ के सिर पर भी तो खुले आसमान की ही छत होती है. उनके सिर पर तो टूटी-फूटी सही कम से कम एक छत तो है. ताड़ के पत्तों से छाजन के छेद को ढक कर ही इस बार बेड़ा पार कर लेंगे.

□

त्रिशूर के रास्ते पर चांद की जुन्हाई टपक रही थी. चथुन्नी अपने घर की ओर ऐसे ही चला जा रहा था जैसे जंगल के बीच छलांग लगाते हुए बाघ मस्त चाल से निकल जाता है. चांद की दूधिया चांदनी में उसके पीले बदन की काली-काली धारियां एक अदभुत आह्लाद और उल्लास से थिरक रही थीं....

सी, २६/३५-४०, ए, रामकटोरा,
वाराणसी-२२१००१.
फोन : ०५४२–२२०४५०४
मो.: ९४५५१६८३५९

कहानी

भीगी हथेलियों का स्पर्श

✍ सुरभि बेहेरा

सुबह के पांच बजने वाले थे. क़रीब दस-पंद्रह मिनट बाद बस राउरकेला पहुंचने ही वाली थी. दिन भर ऑफ़िस की माथापच्ची और रात को बस के सफ़र से पीयूष को थकान-सी महसूस हो रही थी. उसने अपने पॉकेट से रुमाल निकाल कर मुंह पोंछा, चश्मे के कांच साफ़ किये और अटैची पकड़कर बस के नीचे क़दम रखा. सामने वाली चाय की दुकान से एक प्याली चाय पीने के बाद, उसे थोड़ी ताज़गी-सी महसूस हुई. वैसे तो सुबह-सुबह पैदल चलना ही उसे ज़्यादा अच्छा लगता था. परंतु थकान की वजह से उसने रिक्शा पकड़कर जाना ही बेहतर समझा.

घर पहुंचते ही उसने दरवाज़े पर दस्तक दी. वह जानता था कि दस्तक की आवाज़ सुनते ही सोनू दौड़ता हुआ आ जायेगा. लेकिन आज ऐसा कुछ भी नहीं हुआ. किसी के भी क़दमों की आहट न पाकर वह थोड़ा सहम-सा गया. कहीं सोनू की तबीयत तो ख़राब नहीं हो गयी? वह मन ही मन कुछ सोचने लगा. तभी अचानक सिटकनी खुलने की आवाज़ आयी.

- सामने एकता खड़ी थी.

इस वक़्त एकता को देखकर पीयूष अचंभित हो उठा. साधारणत: इस वक़्त वह घर पर रहती ही नहीं थी, सैर के लिए निकल जाती थी. हमेशा सोनू ही आकर दरवाज़ा खोलता. वह सुबह जल्दी उठकर पापा के आने की राह देखता रहता.

पापा को देखते ही सोनू ख़ुशी से उछल-उछल कर पागलों की तरह चिल्लाने लगता — पापा आ गये! मेरे प्यारे पापा आ गये.

पीयूष अपने चार साल के बेटे सोनू को तुरंत गोद में उठा लेता. अपनी बांहों की जकड़न में उसे इस तरह कसकर पकड़ लेता, मानो वर्षों के खोये हुए बेटे को गले लगाया हो. सोनू भी पापा की गोद में अपने आपको सुरक्षित पाता. पापा को दिखाने के लिए उसके पास कई तरह की चीज़ें रहतीं. महीने के प्रत्येक शनिवार की सुबह वह इन सारी चीज़ों को दिखाने के लिए बेताब रहता. पापा के साथ ढेर सारी बातें करना, पापा के लाये हुए नये-नये खिलौनों के साथ खेलने में उसे बड़ा आनंद मिलता.

शाम होने पर पापा का हाथ पकड़कर आई. जी. पार्क में घूमना, आइस्क्रीम खाना, चिड़ियाघर में जानवरों के चमत्कारी करतब देखने में उसे बहुत मज़ा आता. इन छोटी-छोटी ख़ुशियों को पाने के लिए ही वह प्रत्येक शनिवार को सुबह जल्दी उठ जाता. पापा को अपने बाग़ीचे के नये-नये पौधे और फूल दिखलाता.

नानी उसे अपने पास बुलाती रहती. पर, वह उस समय किसी की भी बात नहीं सुनता. उसकी सारी ज़रूरतें पूरी होने के बाद ही वह पापा का हाथ छोड़ता और अपनी तोतली जुबान से पापा को कहता — 'पापा' अब आप कपड़े बदल लीजिए, फिर हम दोनों साथ ही नाश्ता करेंगे. अपने छोटे से बातूनी बेटे की समझदारी को देखकर पीयूष समझ ही नहीं पाते कि वह इतनी छोटी उम्र में कैसी इतनी दायित्वपूर्ण बातें कह पाता है. शायद, हालात ने ही उसे वक़्त से पहले समझदार बना दिया है.

यहां आने के लिए बस से सफ़र करने पर लगभग आठ घंटे लग जाते हैं. भुवनेश्वर से यहां तक आने के लिए क़रीब दो-तीन बसें ही होती हैं. पहली बस सुबह पांच बजे आती है और वापस लौटने के लिए शाम के साढ़े छह बजे की बस लेता है. केवल बारह घंटे के लिए ही सही, किंतु प्रत्येक शनिवार को पीयूष यहां ज़रूर पहुंच जाता. सोनू की तुतली बातें सुनने और उसके साथ खेलने में उसे भी बड़ा मज़ा आता. इसके लिए वह ऑफ़िस से टूर वग़ैरह को भी ठुकरा कर किसी न किसी बहाने यहां आ ही जाता. इन बारह घंटों में पूरे सप्ताह की थकान कहां गुम हो जाती उसे पता ही नहीं चलता.

दिन भर घर पर रहने के बावजूद एकता से उसकी भेंट हो ही नहीं पाती थी. पीयूष भुवनेश्वर के स्टेट बैंक में कार्यरत

१९, फरवरी, १९६६, राउरकेला, ओड़िशा;
एम. ए. (हिंदी) — संबलपुर विश्वविद्यालय, ओड़िशा.

: प्रकाशित :

ओड़िया की चर्चित कहानियां (अनूदित) २००७; ख़िलती पंखुड़ियां (मौलिक) २००७, बबूल की छांव (अनूदित) २००९; दिशाहीन नदी (अनूदित), सपने : जो पूरे न हो सके (मौलिक); नटखट चिंटू (बाल कथा संग्रह); नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया द्वारा नेहरू बाल पुस्तकालय के तहत नटखट चिंटू बाल कहानी प्रकाशनाधीन; मौलिक कथा संग्रह खिलती पंखुड़ियां का मराठी भाषा में अनुवाद (उमलत्या कळ्या) २०१२.

इसके अतिरिक्त २००३ से अब तक हिंदी की विभिन्न स्तरीय पत्रिकाओं में जैसे - इंद्रप्रस्थ भारती, नवनीत, पालिका समाचार, भाषा, संस्कृति, मधुमती, नया ज्ञानोदय, भाषा परिचय, नई धारा, परती पलार, समग्र दृष्टि, तुलसीप्रभा, युगीन, शोध दिशा, विविधा, वागर्थ, मेरी सहेली, अहल्या, सेतु, सरस्वती सुमन, वैश्यवसुधा, हिंदुस्तान, जान्हवी, पिनाक, कथाक्रम, इस्पात भाषा भारती, हरिगंधा, समकालीन भारतीय साहित्य, भारी पानी यंत्र, सांवली, साहित्य-भारती, युगस्पंदन, प्रगतिवार्त्ता, साहित्य परिवार, आर्य संदेश, आजकल, कथा समय आदि में समीक्षा, लेख, साक्षात्कार मौलिक तथा अनूदित कहानियां प्रकाशित.
इसके अलावा चंपक, स्नेह, बालवाटिका, बालभारती, अभिनव बाल पत्रिका आदि कई बच्चों की पत्रिकाओं में बाल कहानियां प्रकाशित.

: प्राप्त पुरस्कार :

राष्ट्रीय राजभाषा पीठ, इलाहाबाद द्वारा भारती का विवरण भूषण सम्मान (२००६), ओड़िया और हिंदी भाषा के मध्य सेतु निर्माण हेतु संकल्प संस्थान, राउरकेला द्वारा सारस्वत संकल्प शिरोमणि सम्मान (२०११), हिंदी कहानी एवं अनुवाद के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान हेतु उत्कल मेल सम्मान (२०१२), हिंदीतर भाषा हिंदी लेखक पुरस्कार योजना के अंतर्गत मौलिक कृति खिलती पंखुड़ियां को राष्ट्रीय सम्मान वर्ष (२००९).

: अन्य साहित्यिक :

हिंदी साहित्य में भाषायी वैज्ञानिकता और तकनीकी दृष्टिकोण (२००४) भिलाई संगोष्ठी में प्रतिभागी, संकल्प संस्थान, राउरकेला, ओड़िशा के विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रमों के आयोजन में सक्रिय योगदान, भुवनेश्वर (नवंबर २०११) में आयोजित अखिल भारतीय परमाणु ऊर्जा राजभाषा सम्मेलन में प्रतिभागी. लेखक साम्मुख्य, भुवनेश्वर, ओड़िशा के विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रमों के आयोजन में सक्रिय योगदान.
ओड़िसा एवं हिंदी भाषा अध्ययन तथा आड़िसा से हिंदी अनुवाद कार्य में विशेष रुचि.

था, और एकता राउरकेला गवर्नमेंट कॉलेज में बॉटनी की प्राध्यापिका थी. वह सुबह आठ बजे से पहले ही खा-पीकर कॉलेज के लिए निकल पड़ती. दोपहर तक तो उसकी थ्योरी क्लास ही चलती रहती, उसके बाद शाम तक प्रेक्टिकल क्लास में व्यस्त रहती. शुरू से ही एकता अपने कैरियर को लेकर बहुत केयरफुल रही थी. अपनी रूटीन लाइफ़ में थोड़ी-सी भी हेर-फेर वह बर्दाश्त नहीं कर पाती. सुबह जल्दी उठकर सैर पर जाना, फिर वापस आकर सोनू की देखभाल करना, और फिर कॉलेज जाने की तैयारी करना यही उसकी दिनचर्या थी. बहुत कम ही दिन ऐसे होते जब पीयूष और एकता एक-दूसरे के आमने-सामने हो पाते.

एक तरह से देखा जाये तो उनकी यह दिनचर्या ठीक ही चल रही थी. पीयूष को अपने इकलौते बेटे सोनू के साथ खेलने का समय भी मिल जाता और एकता को अपनी रूटीन लाइफ़ में फेर-बदल करने से बचने का एक नायाब मौक़ा.

क़रीब पिछले सात-आठ महीनों से ही उन लोगों ने अपने रहन-सहन में यह बदलाव लाने का फ़ैसला किया था और दोनों ही अपने इस फ़ैसले से ख़ुश थे. आख़िर, इस जद्दोज़हद की ज़िंदगी में एक ठहराव का होना भी तो बहुत ज़रूरी है.

तलाक ले लेने से शायद कोई समाधान निकल पाता. परंतु ऐसा करने से लाभ किसे होता? बल्कि सोनू को ही तकलीफ़ होती. उसे मां-बाप दोनों के प्यार से वंचित रहना पड़ता.

इसके अलावा, तलाक देते वक़्त कोर्ट में भी क्या कहा जाता — 'इस आदमी को और मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती' अथवा 'इस औरत के साथ मैं कभी भी ख़ुश नहीं

रह सकता' — इतना कहने पर भी न्यायमूर्ति के न्याय में इस तर्क को कहां तक न्याय मिल पाता? उससे तो यही अच्छा है एक मौन राजीनामा.

अब पहले की तरह हर बात में बहस, नोंक-झोंक और किसी भी तरह की अशांति होने का डर ही नहीं होता. दोनों ने एक-दूसरे से अलग रहकर जीने का फ़ैसला कर लिया था. प्रत्येक सप्ताह के शनिवार को पीयूष सोनू से मिलने आता, उसके साथ खेलता और शाम को वापस लौट जाता.

किसी ग़लतफ़हमी के कारण ही वे दोनों एक-दूसरे से अलग हो गये थे. कोई भी दो व्यक्ति इतने दिनों तक, एक साथ रहने के बाद अचानक एक दिन सुबह संपूर्ण रूप से एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकते. उनके बीच कोई न कोई ख़ामियां ज़रूर रही होंगी, कोई न कोई मतभेद ज़रूर रहा होगा. जिसकी वजह से आज वे लोग इस मुकाम पर पहुंचने के लिए मज़बूर हो गये थे. जिस तरह नदी से मिलने के लिए समुद्र अपनी बांहें हमेशा फैलाये रखता है, उसी तरह पीयूष ने अपने मन में यह गांठ बांध ली थी कि आज नहीं तो कल एकता को अपनी ग़लतियों का अहसास ज़रूर हो जायेगा. और पीयूष उस विशाल समुद्र की तरह उसकी सारी ग़लतियों को माफ़ कर उसे अपनी बाहों के घेरे में भर लेगा. सही मायने में आज की नौकरीपेशा ज़िंदगी की यही नियति है.

परंतु पीयूष के जीवन में यह नहीं हो पाया. उसका गृहस्थ जीवन इतना कठिन हो जायेगा, उसने सपने में भी नहीं सोचा था. इसका पहला संकेत उसे सुहागरात को ही मिल गया था. शुरू-शुरू में तो छोटी-छोटी बातों पर ही बहस हो जाती थी. धीरे-धीरे एक-दूसरे से खिन्न होकर मन को बेचैन कर देने वाली घटना भी घट जाती. पीयूष की लाख कोशिश के बावज़ूद दोनों के मन का मेल नहीं हो पाया.

यह सोचते हुए भी बुरा लगता है कि सोनू उनके मधुर प्रणय की निशानी नहीं है; कभी किसी रात ग़ुस्से में आकर पीयूष उसके साथ ज़बरदस्ती करता और आज उसी ज़बरदस्ती का प्रमाण सोनू है. पता नहीं उन दोनों की बातों में ऐसी कौन-सी नाराज़गी थी कि साथ रहते हुए भी वे दोनों एक-दूसरे का साथ नहीं दे पाये.

यदि एकता एक संस्कारी परिवार की लड़की नहीं होती तो वह क्या करती? आत्महत्या या फिर भ्रूण हत्या? प्रतिशोध की इस ज्वाला में किसकी जीत होती और किसकी हार? इन दोनों के इस झगड़े में हार तो सोनू की ही होती. शायद यही वजह थी कि सोनू की ख़ुशी के लिए ही, उन लोगों ने साथ नहीं रहकर भी साथ रहने का नाटक शुरू किया था.

जब एकता घर छोड़ कर गयी थी उस वक़्त सोनू केवह छह महीने का ही था और आज वही सोनू चार साल का हो गया है. यह साढ़े तीन साल का अंतराल उस रेगिस्तान की तरह है जिसका न कोई अंत है और न ही आरंभ. इस वीरान मरुभूमि के बीच प्रत्येक सप्ताह का यह शनिवार एक मृग मरीचिका-सा प्रतीत होता. जेठ महीने की कड़ी धूप हो या आषाढ़ महीने की रिमझिम बारिश. चाहे जितनी भी मुश्किलों का सामना करना पड़े पीयूष किराये के इस छोटे-से मकान में हमेशा समय पर ही पहुंच जाता.

दरवाज़े पर दस्तक देते ही सिटकनी खुलने की आवाज़ आती और सामने सोनू का सुंदर सुकोमल चेहरा देखने को मिलता. पर, आज तो कुछ अलग ही देखने को मिला. दस्तक देने के बाद जिसने आकर दरवाज़ा खोला वह और कोई नहीं एकता थी.

एकता ने सामने पीयूष को तो देखा पर, न ही उसे देखकर मुस्कुरायी और न ही अंदर आने के लिए कहा. बल्कि चुपचाप एक किनारे खड़ी होकर उसने पीयूष को अंदर जाने के लिए रास्ता दे दिया.

एकता को कॉलेज से फ़ुर्सत ही बहुत कम मिलती. इसलिए ज़्यादातर घर का सारा सामान बिखरा पड़ा रहता. लेकिन आज ऐसा नहीं था, क्योंकि आज शनिवार था, यानी पीयूष के आने का दिन. इस छोटे-से घर में सोनू अपनी मम्मी और नानी के साथ जल्दी उठता और अपने नन्हे-नन्हे हाथों से बिखरे हुए सामान को समेटने की कोशिश करता. इस काम में नानी भी उसकी मदद करतीं ताकि पीयूष के आने से पहले कमरा साफ़ दिखे.

देर तक पीयूष सोफ़े पर बैठकर सोनू के आने की राह ही देख रहा था. पर अब तक सोनू को आते न देखकर वह चिंतित होकर सोचने लगा कि आख़िर आज सोनू गया कहां? सोनू को न देखकर उसे बेचैनी-सी होने लगी. उसने सोफ़े से उठकर इधर-उधर देखा. एक-दो बार सोनू को आवाज़ भी लगायी. कोई जवाब न पाकर फिर से सोफ़े पर

बैठ गया और अपने जूते उतारने लगा.

जूते उतारते वक़्त पीयूष ने तिरछी नज़र से सामने खड़ी एकता की ओर देखा. एकता ने हल्की आसमानी रंग की साड़ी पहनी हुई थी. उसके चेहरे पर भी आकाश-सा गांभीर्य और थोड़ी थकावट-सी थी. थोड़ी देर चुपचाप खड़ी रहने के बाद उसने गंभीर स्वर में पीयूष से पूछा — 'चाय पीओगे?'

पीयूष भी इसी मौक़े की तलाश में था कि कब एकता उससे कुछ पूछे ताकि बातों का सिलसिला शुरू हो सके. उसने एकता की ओर देखते हुए पूछा — 'सोनू कहां है?'

— 'उसकी तबीयत ठीक नहीं है. बहुत तेज़ बुखार है. इसलिए अब तक सो रहा है. तुम तब तक चाय पियो, मैं बनाकर लाती हूं.' एकता ने औपचारिकता निभाते हुए कहा.

उसकी बातों का कोई जवाब न देकर पीयूष चुपचाप सोने वाले कमरे में चला गया.

सोने वाला कमरा काफ़ी बड़ा था. साधारण साज-सज्जा थी. एक कोने में डबल बेड बिछा हुआ था. दूसरी तरफ़ टी. वी., अलमारी वग़ैरह रखे हुए थे. खिड़की के पास एक सितार रखा हुआ था. एकता को क्लासिकल गीतों का शौक़ था. छुट्टी के दिनों में वह अक्सर सितार बजाया करती थी.

पीयूष ने देखा - सोनू पलंग के एक कोने में लंबी-लंबी सांस लेते हुए सो रहा है. नानी उसके सिरहाने बैठकर पट्टियां बदल रही हैं. पीयूष ने उसके गले को छूकर देखा बुखार अब भी बहुत तेज़ था. अपने इकलौते बेटे को ऐसी हालत में देखकर वह बेतरह घबड़ा गया. एकता की ओर देखकर पूछा — कब से बुखार हुआ है? तुमने डॉक्टर को दिखाया या नहीं? दवा वग़ैरह दी या नहीं?

पीयूष के इतने सारे सवालों के जवाब में एकता ने केवल इतना ही कहा — अभी थोड़ी ही देर पहले डॉक्टर आये थे, दवा भी दे दी है. एक-दो दिन में ठीक जायेगा. पीयूष और कुछ पूछते, उससे पहले ही एकता चाय बनाने का बहाना बनाकर कमरे से बाहर निकल गयी.

नानी ने बताया कि सुबह से सोनू ने दूध तक नहीं पिया है. कह रहा था — 'पापा के आने के बाद ही दूध पियेगा. अब तुम आ गये हो तो इसके पास ही बैठे रहो. मैं किचन में एकता का हाथ बंटाती हूं', इतना कहकर नानी भी वहां से चली गयीं.

पीयूष ने सोनू को उठाना चाहा पर, वह एकदम गहरी नींद में सो रहा था. अकेले बैठकर पीयूष मन ही मन सोचने लगा — आज कई महीनों बाद एकता को इतने क़रीब से देखा. इससे पहले जब कभी भी वह यहां आता, एकता टहलने गयी होती या फिर बाज़ार गयी होती. वहां से लौटने के बाद वह जल्दी-जल्दी अपने काम निपटा कर कॉलेज के लिए निकल पड़ती. शायद वह पीयूष से मिलना ही नहीं चाहती थी.

एक बार शाम के समय पीयूष ने एकता को बस स्टैंड पर देखा भी था. उसके हाथ में सब्ज़ी से भरा बैग था और वह बहुत तेज़ क़दमों से आगे बढ़ रही थी. पीयूष ने समझा, शायद वह उसी की ओर चली आ रही है पर, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ. वह पीयूष को देखकर भी अनदेखा कर घर की तरफ़ चली गयी.

पिछले कई वर्षों से इसी तरह इस घर के अंदर बैठकर पीयूष एकता के अस्तित्व को सिर्फ़ अनुभव किया करता. टेबल पर रखी हुई उसकी तस्वीर, हैंगर पर टंगी हुई उसकी साड़ी, आदमक़द आईने के सामने रखी उसकी प्रसाधन सामग्री आदि अनेक भौतिक अस्तित्व से इस घर के अंदर एक सुगंधित वातावरण बन जाता. अतीत के खट्टे-मीठे अनुभवों के बीच कब शाम हो जाती उसे पता ही नहीं चलता. उसके बाद सोनू से विदा होकर वह वापस अपने आश्रय में लौट आने के लिए निकल पड़ता.

सोनू के इंतज़ार का यह सिलसिला कब से शुरू हुआ उसे ठीक से याद नहीं, परंतु प्रत्येक शनिवार की सुबह बड़ी बेसब्री के साथ वह अपने पापा के आने की राह देखता रहता. महीने के दिनों के चक्र का हिसाब वह भले ही न जानता हो, लेकिन शुक्रवार की शाम उसके जीवन के एक अहम् हिस्से के समान है. मां की चुप्पी और रसोई की ख़ुशबू से ही उसे इस बात का संकेत मिल जाता कि अगला दिन ही शनिवार है, उसके पापा के आने का दिन.

इतनी बेसब्री के बाद भी आज तक सोनू ने कभी भी पापा से अनुरोध नहीं किया कि पापा आज रात आप यही रुक जाइए. थककर जब पीयूष उससे कहता — अब और नहीं, बाक़ी कल सुबह खेलेंगे. तब भी वह केवल इतना ही कहता — 'ठीक है, आज के लिए इतना ही. बाक़ी

आपके आने के बाद. उसके बाद थोड़ा मायूस होकर पापा से हाथ मिलाकर टाटा कर देता.

थोड़ी ही देर बाद एकता ने चाय और एक प्लेट में कुछ नाश्ता लाकर मेज पर रखा. प्लेट में मेथी के पराठे और चटनी भी थी, पीयूष की पसंद की चीज़. कुछ कहने से पहले ही एकता फिर से क़िचन की तरफ़ चली गयी.

आज एकता कॉलेज नहीं गयी थी. शायद सोनू की वजह से ही वह नहीं जा पायी. पीयूष मन ही मन सोचने लगा — चलो इसी बहाने ही सही, आज कुछ देर तक एकता का साथ तो रहेगा. भले ही वह थोड़े समय का साथ शब्दहीन और भावशून्य हो, लेकिन उसके पास होने का अहसास तो बना रहेगा. वर्ना हर बार तो एकता से भेंट भी नहीं हो पाती थी. नाश्ता करने के बाद पीयूष चाय पी ही रहा था कि सोनू की नींद खुल गयी. नींद से भरी आंखें मलते-मलते अपने सामने पापा को देखकर वह बहुत ख़ुश हो गया. इतना तेज़ बुखार होने के बावजूद उसके चेहरे पर ख़ुशी की लहर साफ़ झलकने लगी. बिस्तर से उठकर वह सीधे पापा की गोद में आ गया.

जिस एक कप दूध के लिए उसकी मां को घंटों ख़ुशामद करनी पड़ती, कई वादे करने पड़ते या फिर नानी को एक-दो कहानियां सुनानी पड़तीं, आज वही एक कप दूध सोनू ने पलक झपकते ही पी लिया. और फिर पापा के साथ बैठकर खेलने के लिए तैयार हो गया.

एकता ने देखा कि सोनू पापा के साथ बहुत ख़ुश है. बुख़ार भी न जाने कहां ग़ायब हो गया. उसने उसे दवा पिलायी और पीयूष से कहा — 'मैं थोड़ी देर के लिए कॉलेज जा रही हूं. जल्द ही वापस लौटने की कोशिश करूंगी.'

— 'कॉलेज! मैंने तो समझा था कि आज तुमने छुट्टी ली है.' पीयूष ने आश्चर्य भरे स्वर में कहा.

— 'हां, छुट्टी के बारे में सोच ही रही थी. पर, अब तो सोनू का बुख़ार भी कम हो गया है और वह तुम्हारे साथ बहुत ख़ुश भी है. इसलिए सोचती हूं कि एक-दो ज़रूरी क्लास लेकर जल्दी लौट आऊं. परीक्षा भी बहुत नज़दीक है, क्लास नहीं लेने पर कोर्स ख़त्म नहीं हो पायेंगा.' इतना कहकर एकता ने छाता पकड़ा और दरवाज़े से बाहर निकल गयी.

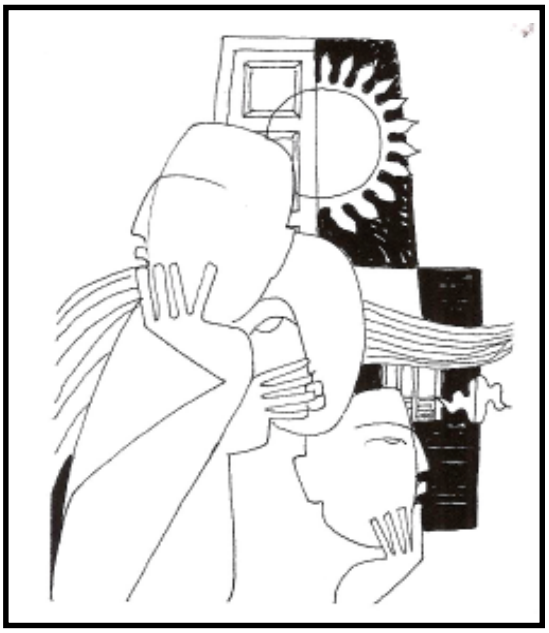

पीयूष को लगा जैसे एकता उससे पीछा छुड़ाने के लिए ही नये-नये बहाने बना रही हो. अब घर पर सोनू था और उसकी नानी थीं. आज भी उसे एकता का साथ नहीं मिल पाया.

दोपहर के समय सोनू ने पापा से कहा — मम्मी को आने में देर हो जायेगी, इसलिए उनका इंतज़ार करना बेकार है. हम लोग खाना खा लेते हैं, मम्मी आने के बाद खा लेगी.

पीयूष जानता था कि एकता बहुत ही परिश्रमी अध्यापिका है. उसके छात्र भी उसे बहुत पसंद करते थे. मेहनती और स्नेही अध्यापिका के रूप में उसका अच्छा नाम भी था. इसलिए एकता को दोष देना ठीक नहीं होगा.

दोपहर के लगभग तीन बजे एकता कॉलेज से वापस लौटी. पसीने से भीगे हुए मुंह को पोंछते हुए उसने मां से कहा — प्रैक्टिकल क्लासेस की वजह से देरी हो गयी. सोनू कैसा है? उसने दवा ली या नहीं? मैं अभी डॉक्टर से मिलकर आ रही हूं. उन्होंने कहा है कि कल तक वह पूरी तरह ठीक हो जायेगा, केवल दवा समय पर खानी पड़ेगी.

'तुम इतनी चिंता मत करो. अपने पापा को देखकर उसकी आधी बीमारी तो ख़त्म हो गयी है. आज दिन भर वह काफ़ी ख़ुश था. अभी तक अपने पापा के साथ ही खेल रहा था. थोड़ी देर पहले ही खाना खाकर सोया है. तुम हाथ-पैर

धोकर पीयूष के पास बैठो. मैं तुम्हारे लिए चाय बनाकर लाती हूं.' मां ने समझाते हुए कहा.

एकता को न ही चाय पीने की इच्छा थी और न ही पीयूष के पास बैठने की. वह दूसरे कमरे में जाकर चुपचाप बिस्तर पर लेट गयी. आज एकता बहुत थक गयी थी. थ्योरी क्लास के साथ-साथ प्रैक्टिकल क्लास भी लेना पड़ा था. बाज़ार और डॉक्टर से मिलकर आते-आते काफ़ी देरी भी हो गयी थी. जब पीयूष साथ रहता था, तो कम से कम ये सारे काम तो उसे नहीं करने पड़ते थे. थकावट की वजह से बिस्तर पर लेटते ही एकता की आंख लग गयी.

चार साल का सोनू यह अच्छी तरह जानता था, कि उसके मम्मी-पापा अलग-अलग रहते हैं. जिस तरह नानी और मम्मी का एक ही पलंग पर सोना उसके लिए एकदम सहज बात है, उसी तरह पापा-मम्मी का एक साथ बैठकर गप्पें मारना, खेलना उसके लिए एकदम असहज है. इसलिए पापा-मम्मी को अलग-अलग कमरे में देखकर भी उसे हैरानी नहीं होती. और यही कारण है कि वह अपने अतिथि पापा के मनोरंजन के लिए रुमाल द्वारा चूहा, भुट्टा, झूला आदि बना कर दिखाने लगता. सोनू ने अपने स्कूल के दोस्तों के साथ ऐसी कई चीज़ें बनाना सीख लीं थीं. अपने खाली समय में वह इन्हीं चीज़ों को बनाकर नानी और मम्मी को दिखाया करता. उसकी इस कला की प्रशंसा सभी किया करते थे.

पीयूष भी इसमें भरपूर आनंद लिया करता था. एक साथ रहते वक़्त एकता भी इन सभी चीज़ों का आनंद लेती. एक बार पीयूष के बनायी हुई नाव को देखकर उसने कहा भी था कि तुम्हारी इस नाव पर बैठकर मैं सात समुंदर पार हो जाऊंगी और तुम मुझे खोज भी नहीं पाओगे.

पीयूष ने हंसते हुए कहा था — 'मैं तुम्हें नाव पर अकेले बैठने ही नहीं दूंगा तो खोजने की ज़रूरत ही कैसे पड़ेगी. और सचमुच पीयूष ने जीवन की नाव पर उसे अकेले बैठने के बावजूद कभी अकेला नहीं छोड़ा. सप्ताह के हर शनिवार को वह सोनू के बहाने ही सही एकता की खोज-ख़बर तो ले ही लिया करता था.

अचानक कलाई पर नज़र पड़ते ही पीयूष चौंक उठा. शाम के छह बज चुके थे. दस मिनट के अंदर उसे निकल जाना है, वर्ना बस पकड़ने में मुश्किल हो जायेगी. बस स्टैंड जाने के लिए उसे ऑटो से क़रीब पंद्रह मिनट लग जायेंगे. उसके बाद फिर आठ घंटे का बस का सफ़र. रात के क़रीब तीन बजे घर पहुंचने के बाद, वह फ्रिज से निकाल कर कुछ खा लेता और बिस्तर पर जाकर सो जाता. रविवार की सुबह वह देर तक सोता रहता. सोये रहने से अकेलापन काटने नहीं आता.

पीयूष ने सोनू की तरफ़ देखा — वह बड़े प्यार से उसकी गोद में बैठकर रुमाल से कुछ बना रहा था. उसे शायद याद भी नहीं था कि उसके पापा के जाने का समय हो गया है. पीयूष ने उसे पुचकारते हुए कहा — 'अच्छा सोनू, अब मैं जा रहा हूं. मुझे छोड़ने बाहर तक नहीं आओगे?'

सोनू कोई जवाब न देकर चुपचाप बैठा रहा. इसी बीच एकता भी कमरे के अंदर आ गयी थी. उसने पीयूष से कहा — 'तुम्हें एक बात तो बताना ही भूल गयी. आज शाम सात बजे सोनू के स्कूल में पैरेंट-टीचर मीटिंग भी है. सोनू की तबीयत ख़राब होने की वजह से भूल गयी थी. अभी-अभी याद आया तो बताने चली आयी. हर बार तो मुझे अकेले ही जाना पड़ता है. इसकी प्रिंसिपल और क्लास टीचर हमेशा ही सोनू के पापा के बारे में मुझसे पूछती रहती हैं. मैं हर बार नये-नये बहाने बनाकर टालने की कोशिश करती हूं. सोनू भी पापा के न आने पर अपने दोस्तों के बीच अटपटापन महसूस करता है. इसलिए अगर तुम पैरेंट मीटिंग अटेंड कर पाते तो सोनू को बहुत ख़ुशी मिलती.' एकता ने एक ही सांस में पीयूष को सब कुछ बता दिया.

इस आकस्मिक समस्या का हल क्या होगा. यह पीयूष की समझ में ही नहीं आ रहा था. वह सोच में पड़ गया कि आख़िर एकता को क्या जवाब दिया जाये. इन चार सालों में आज पहली बार एकता ने अपनी तरफ़ से कोई मांग की थी, वह भी सोनू का नाम लेकर. पीयूष कुछ कहता इससे पहले ही सोनू की नानी बोल उठीं — 'इसमें सोचने वाली कौन-सी बात है पीयूष? आख़िर सोनू तुम्हारा बेटा है. पैरेंट मीटिंग में तुम्हारी अहमियत भी तो बहुत ज़रूरी है. आज रात तुम यहीं रुक जाओ. सोनू भी ख़ुश हो जायेगा. वैसे भी कल तो रविवार है. तुम्हारी छुट्टी ही है.

'आज रात! पर मुझे तो कल एक बहुत ज़रूरी मीटिंग अटेंड करनी हैं.' पीयूष के मुंह से अचानक ऐसी

झूठी बात कैसे निकल गयी, वह ख़ुद भी नहीं समझ पाया.

'हां पापा, आज रात आप यहीं रुक जाओ न, आपके लिए मेरे पलंग पर जगह भी हो जायेगी. मैं अपने दोस्तों से आपको मिलवाऊंगा. वे हमेशा मुझे चिढ़ाते रहते हैं — तुम्हारे पापा से तुम्हारी मम्मी का झगड़ा है इसलिए वे तुम्हारे साथ नहीं रहते हैं. यदि आज आप हमारे साथ स्कूल चलेंगे तो मैं उन सभी का मुंह हमेशा के लिए बंद कर दूंगा.' सोनू अचानक आयी हुई इस ख़ुशी को पाकर पागलों की तरह बोलता ही चला जा रहा था.

'तीन-चार घंटे के लिए भी रुक जाते तो अच्छा होता. अगर जाना बहुत ज़रूरी हो, तो ग्यारह बजे वाली बस से जा सकते हो. हम लोग एक-दो घंटे में उसके स्कूल से लौट आयेंगे, उसके बाद खाना खाकर भी बस पकड़ी जा सकेगी.' एकता ने अपनी राय बतायी.

पीयूष के कोमल हृदय में कहीं न कहीं यह चाहत छिपी हुई थी कि एकता उसे कभी किसी बहाने रुकने के लिए कहे और वह रुकने के लिए विवश हो जाये. इसलिए एकता की राय सुनने के बाद कुछ न कहकर वह चुपचाप वहीं कुर्सी पर बैठ गया.

क़रीब सात बजे वे लोग स्कूल पहुंच गये थे. सोनू की क्लास टीचर ने उसके पापा के सामने सोनू की बहुत तारीफ़ की. उन्होंने कहा, सोनू बहुत मेहनती और होनहार लड़का है. वह बहुत ध्यान से टीचर की बातें सुनता है. आप उसकी पढ़ाई में और थोड़ा ध्यान देने की कोशिश करें तो उसका रिज़ल्ट हमेशा अच्छा ही होगा.

टीचर के मुंह से अपने बेटे की इतनी तारीफ़ सुनकर पीयूष फूला नहीं समा रहा था. पीयूष यह अच्छी तरह से जानता था कि उसकी इन अच्छाइयों का सारा क्रेडिट एकता को ही मिलना चाहिए. आख़िर उसकी पूरी देखभाल तो वही करती हैं. पीयूष तो कुछ घंटे ही उसके साथ रह पाता है वह भी एक मेहमान की तरह.

थोड़ी ही देर बाद सोनू अपने तीन-चार दोस्तों को पापा के पास लेकर आया, और बोला — 'यह हैं मेरे पापा. तुम लोग मुझे झूठी कहानियां सुनाया करते थे न. देखो आज मेरे मम्मी-पापा दोनों ही साथ आये हैं. आज पापा हमारे साथ ही रहेंगे.' सोनू के चेहरे से ख़ुशी साफ़ झलक रही थी. ऐसा लग रहा था जैसे आज उसने बहुत बड़ी जीत हासिल कर ली हो.

घर लौटने के बाद सबसे ज़्यादा मुश्किल एकता को ही हुई. रात के दस बजे रहे थे और दिन भर की थकान होने के बावजूद उसे किचन में जाना ही पड़ा क्योंकि पीयूष को जल्दी से खाना खाकर निकलना था. एकता खाना बनाने की कला में माहिर थी. उसे चाइनीज़ बनाना बहुत अच्छी तरह आता था. जब वे दोनों साथ रहते थे तो पीयूष हमेशा उसकी खिल्ली उड़ाया करता, और कहता — 'मेरी धारणा थी कि साइन्स पढ़ने वाली लड़कियों को खाना बनाना आता ही नहीं होगा. पर तुम तो इसके ठीक विपरीत निकलीं. मुझे अब भी डॉउट है कि तुम साइन्स की स्टुडेन्ट हो भी या नहीं?'

एकता हंसते हुए पलट कर जवाब देती — 'यह तुम्हारी ग़लत धारणा है कि साइन्स पढ़ने वाली लड़की को खाना बनाना नहीं आता. दरअसल, साइन्स पढ़ने पर ही खाना बनाने की विद्या में एक सिक्थ सेन्स का जन्म होता है. और जहां तक डॉउट का सवाल है, अब तो मेरी धारणा भी तुम्हारे लिए बदलने लगी है.'

इतनी अशांति, इतने मन-मुटाव के बावजूद भी ये छोटी-छोटी यादें अब भी मन को ताज़ा कर देती हैं. सात-आठ महीनों में अब लड़ाई-झगड़े, बात-बात पर एक-दूसरे के ऊपर छींटाकशी करने की यादें भी फ़ीकी पड़ गयी हैं. पीयूष के मन में अब भी ठंडी रात के अंधेरे में, बारिश की भीनी दोपहर में, या फिर ग्रीष्म की पहली किरण की गुनगुनी आंच में अवचेतन मन के किसी कोने में अचानक एक दीपशिखा-सी प्रज्वलित हो उठती है, उसे अपने चारों ओर एक सुरभित वातावरण-सा महसूस होने लगता है. किसी की कलाइयों के कंगन के मधुर स्वर सुनाई देने लगते हैं.

— क्या कभी एकता को भी ऐसा ही महसूस होता होगा? क्या उसे भी मेरी याद आती होगी? यदि आती होगी, तो वह हर वक़्त इतनी नीरस, इतनी शांत, इतनी चुपचाप क्यों रहती है? क्यों इतने क़रीब आकर भी दूर हो जाती है? क्यों वह इतनी गंभीर, उदास और नीरस हो गयी है? पीयूष जब भी एकांत में बैठता उसके जेहन में इसी तरह के अनेक सवाल कुलबुलाने लगते.

कभी-कभी तो पीयूष की इच्छा भी होती कि वह अपनी एकता के साथ एकांत में बैठकर कुछ पल बिताये. उसके हाथों का स्पर्श करे, उसके साथ कुछ मीठे सपने संजोये. पर कहीं न कहीं से कोई मुश्किल आ जाती है, जो

समुद्र की उद्दंड लहरों की तरह उसके सारे सपनों को बिखेर कर रख देती है. जिसे सुलझा पाना उसके वश में नहीं होता.

लेकिन आज पीयूष उन सारे बांधों को तोड़ देना चाह रहा था. उसे जो भी कहना है आज वह सारी बातें बेझिझक कह देगा. इन्हीं कल्पनाओं में पीयूष ने जब अपनी घड़ी देखी, तो रात के साढ़े दस बज रहे थे. परीक्षा हॉल में प्रवेश करने की तरह उसका हृदय में हलचल मची थी.

अचानक कमरे में किसी के प्रवेश करने की आहट से वह चौंक पड़ा. सामने एकता खड़ी थी. उसे देखते ही पीयूष के मुंह से हठात् निकल पड़ा — 'तुम इस वक़्त! क्या तुम्हें भी कुछ कहना है?

एकता ने दीवार घड़ी की ओर देखते हुए कहा — 'तुम खाना खा लो, वर्ना बस पकड़ने में मुश्किल हो जायेगी. तुम्हें ग्यारह बजे की बस से भुवनेश्वर जाना है न? तुमने कहा था कि तुम्हें कोई ज़रूरी मीटिंग अटेंड करनी है?'

भुवनेश्वर! हां, ज़रूरी मीटिंग तो थी... पीयूष के मुंह से शब्द ही नहीं निकल पा रहे थे. समुद्र के अथाह पानी में लहरों के विलीन हो जाने की तरह उसके स्वर भी कहीं गुम हो गये थे.

हमेशा की तरह आज भी दिल की बात जुबान पर नहीं आ पायी. न जाने क्यों इतने क़रीब आकर भी एकता के सामने उसकी जुबान बंद हो जाती. क्या आज भी वह इसी तरह चुपचाप लौट जायेगा? पीयूष ने अपने-आप से प्रश्न किया.

इसी बीच एकता ने टेबल पर कब खाना लाकर रख दिया, उसे पता ही नहीं चला. खाना खाते वक़्त एकता ने कहा — 'घर पहुंचकर फ़ोन ज़रूर करना. सोनू तुम्हारे बारे में हमेशा पूछता रहता है.'

— घर पहुंचकर? आख़िर कौन-सा घर? क्या यह घर उसका अपना नहीं है? अगर नहीं है, तो वह यहां क्यों आता है? क्यों वह हर शनिवार को अपना सारा काम छोड़-छाड़ कर यहां आने के लिए बेचैन हो जाता है? पीयूष का मन अपने आपसे स्वयं सवाल करने लगा.

पीयूष जाने से पहले सोनू से मिलने उसके कमरे तक गया. वह पलंग पर बैठा हुआ नानी से कहानी सुन रहा था. सोनू पापा के जाने के बाद उन्हें ढूंढ़ता ज़रूर है पर, उदास नहीं होता है. एक शांत और अच्छे बच्चे की तरह अगले शनिवार तक उनके आने का इंतज़ार किया करता है. शायद उसके नसीब में इंतज़ार करना ही लिखा है.

जूता पहनने के बाद पीयूष ने अटैची उठायी और बाहर बरामदे की ओर बढ़ा. बरामदे का बल्ब शाम से ही नहीं जल रहा था. इसलिए बाहर पूरा अंधकार छाया हुआ था. बारिश भी बहुत तेज़ हो रही थी. घर से बाहर निकलना मुश्किल था. इस मौसम में रात के साढ़े दस बजे रिक्शा या ऑटो मिलना भी बहुत मुश्किल था. पीयूष को बस पकड़ने के लिए पैदल ही जाना था. इसलिए उसने एकता को छतरी लाने के लिए कहा.

अंधेरे में पीयूष को छतरी पकड़ाते वक़्त दोनों के हाथों का स्पर्श हो गया. क्षणभर के लिए हल्का-सा वही स्पर्श, एकता के शरीर का. पीयूष न जाने कितने दिनों से अपरिचित सा हो गया था. उसे याद भी नहीं है कि एकता ने कभी कोई चीज़ उसके हाथ में लाकर इस तरह से दी हो. वह तो हमेशा दीवारों की तरफ़ देखते हुए ही पीयूष से बातें किया करती. पता नहीं कैसे उसके मन में इतनी झिझक पैदा हो गयी थी.

आज भी इतनी बारिश होने के बावजूद उसके मुंह से एक बार भी नहीं निकला कि, 'पीयूष आज रात के लिए रुक जाओ, सुबह होते ही चले जाना.' अगर वह एक बार भी कहती तो पीयूष तुरंत राजी हो जाता. न जाने क्यों आज पीयूष को जाने की इच्छा ही नहीं हो रही थी.

बिजली की चमक और बादल के गरजने की आवाज़ से डरकर, सोनू बाहर बरामदे में दौड़ता हुआ आ गया. पापा को बाहर जाते देखकर जोर-जोर से पुकारने लगा — 'पापा आप अंदर आ जाओ, पापा आज आप रुक जाओ.' फिर मम्मी की तरफ़ देखकर कहने लगा — 'मम्मी आप पापा को रुकने को क्यों नहीं कहती हैं? इतनी तेज़ बारिश में पापा कैसे जायेंगे? अगर पापा को बुख़ार आ गया तो कौन उनकी देखभाल करेगा?'

अपने छोटे से बेटे के मुंह से पापा के लिए इतनी चिंता, इतना प्यार देखकर एकता का मन भी पिघलने लगा. अनजाने ही एकता के क़दम पीयूष को रोकने के लिए आगे बढ़ने लगे. वह भीगती हुई गेट तक पहुंच गयी और अपनी भीगी हथेलियों से पीयूष का हाथ पकड़कर धीरे से बोली — 'आज रुक जाओ, बारिश बहुत तेज़ है भीग

दो ग़ज़लें

✍ नवीन माथुर 'पंचोली'

मन को बच्चों जैसा रखना पड़ता है ।
अपनों से जब रिश्ता रखना पड़ता है ।

आसां हो सबसे अपने मिलना-जुलना,
रस्ता सबसे सीधा रखना पड़ता है ।

जब रातों में नींदें पास बुलाती हैं,
आंखों में इक सपना रखना पड़ता है ।

पंछी की आज़ादी जब छिन जाये तो,
पिंजरे से समझौता रखना पड़ता है ।

जब आंखें अपनी बूढ़ी हो जाती हैं,
इनके ऊपर चश्मा रखना पड़ता है ।

जब हमको बातें अपनी मनवाना हो,
रुख पर थोड़ा ग़ुस्सा रखना पड़ता है ।

जब सोचे चांद पे जाया जा सकता है,
सपनों से भी जी बहलाया जा सकता है ।

वैसे तो हम अपनी हद में ही रहते हैं,
इसमें रहकर भी कुछ पाया जा सकता है ।

हम अपने भी नाम से जाने जाते हैं,
ख़ुद पर भी थोड़ा इठलाया जा सकता है ।

अपनों को जब अपने लायक ना पायें,
ग़ैरों को भी तो अपनाया जा सकता है ।

खोना पाना यूं तो क़िस्मत की बातें हैं,
सच भी तो कोई झुठलाया जा सकता है ।

साथ हमारे जब हो कोई हमदम अपना,
खुलकर दिल का हाल सुनाया जा सकता है ।

✍ अमझेरा, जिला धार (म. प्र.)-४५४४४१. मो. : ९८९३११९७२४

जाओगे. सोनू भी कमरे के बाहर खड़ा होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है.'

एकता की इसी एक पंक्ति को सुनने के लिए पीयूष इतने दिनों से बेताब था. एक पल के लिए उसे लगा जैसे आज दुनिया की सारी ख़ुशी उसकी झोली में समा गयी है. उसने एकता की ओर देखा - बारिश की बूंदें उसके पूरे शरीर को भिगो रही थीं. पीयूष ने झट से उसे अपनी छतरी के नीचे खींच लिया. अब पीयूष एकता की निकटता को अच्छी तरह महसूस कर पा रहा था. उसके हाथों की छुवन, सांसों की गर्मी, बालों की ख़ुशबू सब कुछ पहले जैसे ही थी. क्षणभर के बाद पीयूष ने एकता की ओर देखते हुए कहा — 'एकता. इतनी-सी बात कहने में तुमने कितनी देर लगा दी!'

'एकता' को इतने दिनों बाद उसके नाम से बुलाकर पीयूष को एक अजीब अपनेपन का बोध हुआ. कई महीनों में उसने एकता को एक बार भी उसके नाम से नहीं बुलाया था. शायद, आज तक ऐसा कोई मौक़ा ही नहीं मिला.

'एकता, यही बात तुमने पहले कही होती तो आज जीवन में इतना अकेलापन नहीं होता. सोनू हमेशा इतना उदास नहीं रहता.'

'सब दोष मेरा ही है. मैंने सोचा था, तुम मुझे कभी भी माफ़ नहीं करोगे.'

'दोष मेरा भी था. मैंने उस वक़्त तुम्हें रोक दिया होता तो आज यह दिन नहीं देखने को मिलते. क्या तुमने मुझे माफ़ कर दिया है? एकता क्या हम दोनों फिर से एक बार....?'

'हम दोनों ही नहीं, पीयूष. हम तीनों.' एकता ने बरामदे पर खड़े सोनू को बाहों में समेटते हुए कहा.

पीयूष को लग रहा था कि आज की इस बारिश में वह भीगते हुए इसी तरह हथेलियों के स्पर्श को महसूस करता रहे.

✍ क्वार्टर नं. ८/३, ब्लॉक डी-६,
न्यू गवर्नमेंट कॉलोनी, एम.आर.सी.
उपडाकघर, भुवनेश्वर-७५१०१७ (ओड़िशा).
मो. : ९४३८८०३६६०

कविताएं

सबसे ख़ौफनाक

✍ *सुशांत सुप्रिय*

समुद्री चक्रवात की मार
सबसे ख़ौफनाक नहीं होती,
भूकंप की तबाही
सबसे ख़ौफनाक नहीं होती,
छूट गयी दिल की धड़कन
सबसे ख़ौफ़नाक नहीं होती,
सबसे पीछे छूट जाना ... बुरा तो है
एड़ी में कांटे का चुभ जाना... बुरा तो है
पर सबसे ख़ौफ़नाक नहीं होता,
दुःस्वप्न में छटपटाना... बुरा तो है
क़िताबों में दीमक लग जाना ... बुरा तो है
अजंता-एलोरा का खंडहर होता जाना ... बुरा तो है
पर सबसे ख़ौफ़नाक नहीं होता,
सबसे ख़ौफ़नाक होता है
अपनी ही नज़रों में गिर जाना,
देह में दिल का धड़कते रहना,
पर भीतर कहीं कुछ मर जाना.
सबसे ख़ौफ़नाक होता है
आत्मा का कालिख़ से भर जाना,
सबसे ख़ौफ़नाक होता है
अन्याय के विरुद्ध भी
न उबलना लहू का,
चेहरे पर पैरों के निशान पड़ जाना
सबसे ख़ौफ़नाक होता है
खुली आंखों में कब्र का
अंधेरा भर जाना...

✉ द्वारा एच. बी. सिन्हा
५१७४, श्यामलाल बिल्डिंग, बसंत रोड,
नयी दिल्ली-११००५५.
मो. ९८६८५११२८२

क्रमशः

✍ *प्रभा मुजुमदार*

पूरा होते होते भी
छूट ही जाता है
कुछ न कुछ अधूरा.
पूरे लगन, संकल्प के बावजूद
रह ही जाती हैं
कुछ न कुछ ख़ामियां.
चुंधियाती रोशनी में
धुंधलाये साये.
समुद्र तट पर
रेत में छटपटाती मछलियां.
चलते-चलते
पत्थर से टकरा कर
रुकी हुई रफ़्तार.
ऊंचे पायदानों पर
पैरों की फिसलन.
सपनों के पूरा होने से पहले
बंद होती आंखें.
आस बची होने पर भी
रुकी हुई सांसें.
कहते-कहते
अटक जाते कुछ शब्द.
लिखते-लिखते ही
टूट जाती क़लम.
अधूरी पंक्तियां
वैसी ही अधूरी.
संपूर्णता
इतनी भ्रामक क्यों होती है?

✉ ४-७-१, ओ एन जी सी कॉलोनी,
बांद्रा कुर्ला संकुल,
बांद्रा (पूर्व), मुंबई-४०००५१
मो. ९९६९२२१५७०

कहानी

धर्म-अधर्म

✍ इंदुमति सरकार

अशोक ने बाहर से आते ही टी. वी. ऑन कर दिया और जल्दी-जल्दी चैनल बदलते हुए 'आज तक' लगा दिया. ख़बर सही थी. वह पसीना-पसीना होने लगा. बौखलाहट में वह मां, बाबा, संगीता को जोर-जोर से बुलाने लगा. अमूमन अशोक बहुत ही कम बातें किया करता था. आज जीवन में पहली बार उसने इस तरह का आचरण किया था. सभी दौड़े-दौड़े ड्राइंगरूम में आये. क्या हुआ बेटा तू ठीक तो है? इतना पसीना आ रहा है — फैन क्यों नहीं चलाया. कहते हुए मां ने फैन का बटन दबा दिया

— ये सब छोड़ो मां देखो गुरूजी को पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया है.

यह सुनते ही सब सन्न रह गये. टी.वी. पर ब्रेकिंग न्यूज़ दिखायी जा रही थी. धर्म के नाम पर आश्रम में आयी एक महिला से छेड़छाड़ का मामला था. लोगों की भीड़ में घिरे स्वामी दयानंद अपने हाथ उठाकर सभी को धैर्य रखने व ईश्वर से प्रार्थना करने के लिए कह रहे थे. एक पूरा हुजूम उनके पीछे था. बुजुर्ग, युवक, बालक सभी हाथ में केसरी झंडा लिये नारे लगा रहे थे. औरतें छाती पीटते हुए पुलिस को मां-बहन की भद्दी-भद्दी गालियां दे रही थीं. पुलिस वाले ने समझाने की कोशिश की तो एक बड़ा-सा पत्थर भीड़ से उछला और बहते रक्त से उसकी पुलिसिया वर्दी लाल हो गयी.

स्वामी दयानंद ने आगे आकर अपने हाथ जोड़ लिये. उनके चेहरे पर आज भी वही दिव्य तेज़ था.

— भक्तों मुझ पर विश्वास रखो, यह सब सोची-समझी साजिश है. लेकिन ईश्वर से कुछ छिपा नहीं है. स्वामी जी की इच्छा से उनकी गिरफ़्तारी हो गयी.

हम सब स्तब्ध थे. जैसे परिवार का ही कोई सदस्य पुलिस के हत्थे चढ़ गया हो. ख़बर से मां का बी. पी. लो होने लगा था. वह स्वामी जी की बी.पी. कंट्रोल करनेवाली दवाई खाते हुए बोलीं — सच में घोर कलयुग है. अच्छाई का ज़माना नहीं रहा. वह पुलिस वाला तो इस्लामी लग रहा था उसे तो भगवान का डर नहीं है लेकिन वो लौंडी जिसने स्वामी जी पर उंगली उठाई उसे तो ऊपर मुंह दिखाना है. ऐसा लांछन स्वामी जी पर? मेरे हत्थे पड़ जाये तो जूतों, चप्पलों की माला पहनाकर पूरे शहर में नंगा कर के घुमाऊं उसे. तब ही तो उसे इज़्ज़त का मतलब मालूम होगा. और कैसे मां-बाप हैं उसके जो उसे सपोर्ट कर रहे हैं. छी-छी-छी कलयुग है घोर कलयुग.

— बस-बस मां... अब चुप हो जाओ. कहीं तुम्हारी तबीयत न बिगड़ जाये. स्वामी जी पर ईश्वर की कृपा है देखना वे बेदाग़ छूट जायेंगे. चुनाव आने को हैं ज़रूर किसी पार्टी का चुनावी हथकंडा होगा यह. तुम तो जानती हो जीतने के लिए क्या-क्या कर सकते हैं ये राजनेता.

— अरे, अशोक के पापा, आप कहां चल दिये?

— तू चिंता मत कर मैं तो बस स्वामी जी की तस्वीर के आगे दिया जलाने जा रहा हूं.

— अच्छा... मैं भी आती हूं... सभी उनके साथ पूजा घर में चल दिये. पुरुषोत्तम जी ने आरती के बाद स्वामी दयानंद बाबा की जय-जयकार की और उनसे लिया मंत्र जपा. टी. वी. पूरे दिन चलता रहा. संगीता ने मां से खाने के बारे में पूछा तो उसे डपट दिया गया. स्वामी जी पर विपदा आयी है और तुझे खाने की पड़ी है. याद है न उनके आशीर्वाद से ही तू मां बनी है. भला हो श्रद्धा ताई का जो उन्होंने हमें स्वामी जी से मिलाया. नहीं तो आज भी मैं कुलवंशज के लिए तरसती रहती. और तुझसे भूख सहन नहीं हो रही. जा चिंटू को कुछ खिला कर सुला दे. आज रात में खाना नहीं बनेगा. अगले दिन पुरुषोत्तम और अशोक ने गली में टैंट लगा दिया. स्वामी जी की बड़ी-सी फ़ोटो के सामने वे सब बैठे थे, साथ ही आश्रम के कुछ सदस्य भी अपनी बड़ी-बड़ी मोटर गाड़ियों में आते जा रहे थे. सभी ने बड़ी गंभीरता से स्वामी जी का गुणगान किया. अशोक की मां ने महिलाओं की तरफ़ ताका और पीछे बैठी श्रद्धा ताई को आगे आकर बैठने का इशारा करते हुए वह बोलीं — बहनों स्वामी जी के बारे में तो आप सभी जानते हैं. उनके चमत्कार हम सभी ने देखे हैं. श्रद्धा ताई के पति को

रेडियो के युववाणी चैनल पर कविता पाठ.
'आजकल', 'साहित्य-अमृत', 'कादंबिनी', 'संस्कारम',
महिला अधिकार अभियान में कविता कहानी व लेख.
'पांचजन्य', 'संडे पोस्ट' अख़बार में कविताएं.
कादंबिनी के जून-२०१३ अंक में 'मिट्टी की जादूगरी' फ़ीचर
प्रकाशित. महिला अधिकार अभियान की स्वतंत्र कार्यकर्ता.
अंतरराष्ट्रीय संस्था 'बालकन-जी-बारी' से कविता सम्मान प्राप्त.

चलने में परेशानी थी. स्वामी जी के दिये प्रसाद को खाते ही भले-चंगे हो गये. सरला चाची, मिट्ठू मौसी, शांति जी और भला दूर क्यों जायें मेरी बहू को भी तो उन्हीं के आशीर्वाद से बेटा हुआ है. कितनी दवाई करायी थी... कोई कहता ओवरी छोटी है... किसी ने तो मोटापे को ही बीमारी बता दिया. सब कुछ करके देख लिया था. स्वामी जी के छूते ही सूखे वृक्ष से फलदार बन गयी. ऐसे कितने ही उदाहरण हैं जब हमारे दुख स्वामी जी की कृपा से दूर हुए हैं. जिनके दर्शनों के लिए शहर भागता है उन्हें हथकड़ी लगाकर जेल में बंद रखा गया है... कहते हुए अशोक की मां ने अपनी आंखें पोंछीं.... नाक सुड़सुड़ायी. सच कलेज़ा फट जाता है ऐसी बात करते. दुनिया में कोहराम मच जायेगा... धरती जलमग्न हो जायेगी. ऐसा पाप हो रहा है.

एक बूढ़ा भिखारी उनकी बात सुन रहा था. वहां पर मिठाई के डिब्बों, कोलड्रिंक्स की व्यवस्था की गयी थी. जिन्हें देखकर वह उन्हें पाने की कल्पना करने लगा. सत्संग ख़त्म होने के बाद जब अशोक की मां ने उसे अपने दरवाज़े पर देखा तो उसे झिड़की दी — मेरे दरवाज़े पर क्यों बैठा है, कहीं और जा कर मर.

— मां जी अभी चला जाता हूं कुछ मिल जाता तो... ग़रीब की भूख मिट जाती.

— तुझे भूख की पड़ी है कल से मेरे घर में चूल्हा नहीं जला है. स्वामी जी जेल में हैं, शहर में मातम है और तू अधम भिखारी... तुझे खाने की पड़ी है.

— स्वामी जी कौन स्वामी जी? जेल में हैं तो कोई पाप किया होगा. वह दबी जबान में बोला था.

— अशोक.... अशोक जरा इधर तो आ. किसी को सबक सिखाना है. स्वामी जी की निंदा करने की इसकी हिम्मत तो देख. देखते-देखते सभी श्रद्धालु बूढ़े भिखारी को घेर लेते हैं और बिना किसी सवाल-जवाब के उस पर लात-घूसे बरसने लगते हैं. सभी की आंखों में उसके लिए घृणा भरी थी. भिखारी की आख़िरी इच्छा अधूरी ही रही. मिठाई खाये बिना वह दुनिया से विदा ले चुका था.

— स्वामी जी की जय, स्वामी जी की जय... सभी ने एक साथ उच्चारण किया. भीड़ पागल हो चुकी थी. पुलिस वाले अपनी पी सी आर वैन से निकलने में घबरा रहे थे. शव पूरे दिन वैसे ही पड़ा रहा. रक्त से सनी उसकी काया विकराल लग रही थी. म्युनिसिपैलिटी के अधिकारी शव को उठा ले गये.

दो दिन बाद टी. वी. पर स्वामी जी का सत्संग दिखाया गया. वे जेल से ही अपना कार्यक्रम कर रहे थे. ऐसा लगभग हर रोज़ होने लगा. 'न्यूज़ चैनल' न्यूज़ चैनल कम और धार्मिक चैनल ज़्यादा लग रहे थे. स्वामी जी को जमानत मिल गयी थी. उनके ख़िलाफ़ शिकायत करने वाली महिला का कहीं अता-पता न था. अब सिर्फ़ उनके सत्संग की बातें होतीं. उनके जेल से बाहर आने को उनका चमत्कार बताया गया. पुरुषोत्तम का सारा परिवार उनसे आशीर्वाद लेने आश्रम पहुंचा था. सोने की गिन्नियां, मिठाई, मेवे, फल-फूल से भरे थाल का चढ़ावा चढ़ाया गया. स्वामी जी ने अशोक की पत्नी के कंधे पर टेक लगा कर उसे भीतर ले चलने के लिए कहा और दोनों अंदर चले गये. पुरुषोत्तम जी अपनी पत्नी, बेटे के साथ बाहर बैठे रहे.

कई घंटे बीत जाने के बाद भी जब वह बाहर नहीं आयी तो अशोक ने द्वार पर खड़ी औरत से अंदर जाने की बात कही. जिसे सिरे से नकार दिया गया. स्वामी जी की आज्ञा के बिना कोई अंदर नहीं जा सकता था. उससे बात करने पर वह लड़ने पर आमादा थी. स्वामी जी के आदेश की अवज्ञा नहीं की जा सकती थी.

अंदर संगीता निर्वस्त्र लेटी थी. स्वामी जी उसके

लघुकथा

एक लंबी खामोशी

✍ नीरा सिन्हा

राहुल जब रितू को अचानक छोड़कर चला गया तब रितू को महसूस हुआ कि ग़लती की, कि उसने लिव-इन रिलेशन राहुल से बनाया. नोचता-खरोंचता एक साल तक राहुल तो जैसे रितू के ज़िंदगी का रस ही निचोड़ लिया था.

प्रिया ने जब सुना कि राहुल रितू को छोड़ गया है तो उसे चिंता से ज़्यादा क्रोध आ रहा था क्योंकि अपनी सहेली रितू को उसने कई बार समझाया था कि लिव-इन के सारे ख़तरे महिलाओं के लिए हैं, पुरुषों के लिए नहीं. दरअसल चंद स्वार्थी ज़िम्मेदारी से भागनेवाले पुरुषों की सुनियोजित चाल है लिव-इन रिलेशन बनाना ताकि युवा महिलाएं लिव-इन रिलेशन के प्रति आकर्षित हों और भावना में बहकर अपना सब कुछ गंवा बैठें लेकिन रितू इन सभी सुझावों को नज़रअंदाज कर आख़िर रहने लगी थी राहुल के साथ लिव-इन रिलेशन में.

क्या मिला लिव-इन रिलेशन में तुम्हें, प्रिया ने रितू से पूछा था?

रितू के ज़ुबां पर चस्पा थी एक लंबी खामोशी!

प्रोफेसर कॉलोनी, न्यू बरगंड़ा, गिरिडीह-८१५३०१(झारखंड) मो. : ९९३१५८४५८८

बालों और अंग-प्रत्यंग को छूते हुए अपनी जेल यात्रा की थकान मिटा रहे थे. हवस का खेल था... चलता रहा. संगीता वहां होकर भी नहीं थी... पड़ोसी औरतों के लांछन, सास की कड़वी बातें याद कर रही है. बांझ, निपूती, ठूंठ, डायन कितने ही नाम तो रख दिये थे उसके. किसी भी शुभ अवसर पर लोग उसकी छाया से भी कतराते थे. अशोक पुरुष है... अपने आप में पूर्ण.. मुझमें ही कमी ढूंढी गयी. अशोक के लिए मेरी छोटी बहन का रिश्ता भी तो मांगा गया था. मैं कैसे सहन करती. नहीं मैं ग़लत नहीं हूं... मैं तो सती हूं. अपनी शादीशुदा ज़िंदगी बचाने के लिए मैंने यह रास्ता चुना है तो इसमें ग़लत क्या है? स्वामी जी के अलावा तो किसी की छाया भी मुझे छू न सकी है. बेड के एक तरफ़ मुंह करके रो दी थी संगीता और स्वामी जी उसके सिर पर हाथ फेर रहे थे.

थोड़ी देर बाद स्वामी जी संगीता के कंधे पर हाथ रख कर बाहर आ जाते हैं. अब कोई संकट नहीं है... जा बेटी तेरा सुहाग बना रहे. संगीता अशोक के साथ उनके पाव छूती है. और सभी घर वापिस आ जाते हैं. घर में मालपूए बनाये गये हैं. टी. वी. पर न्यूज़ आ रही है. स्वामी जी पर लगे आरोप किसी साक्ष्य के अभाव में झूठे सिद्ध हुए हैं. तभी 'आज तक' का सबसे बड़ा खुलासा होता है. शिकायतकर्ता महिला देह व्यापार में लिप्त थी जिसने रुपये के लालच में स्वामी जी को बदनाम करने की कोशिश की थी. यह सुनकर अशोक की मां थाली सजाती है और स्वामी जी की तस्वीर के आगे भोग लगा देती है. स्वामी जी की जय हो... आख़िर सत्य जीत गया.

हां, मां जी आप ठीक कहती हैं. सत्य की जीत होनी ही चाहिए. मैं आपकी बहू.. आप पर आश्रित... पांच साल तक बांझ, बोझ. कारण मुझमें कमी थी. कमी तो औरत में ही होती है. संसार की रीति है इस कमी को स्वामी जी ने दूर किया है. आपको पोता न सही मुझे पुत्र दिया है स्वामी जी ने. मैं सत्य स्वीकारने से डरती रही. आपकी अंध-आस्था आपको मुबारक हो. मैं चिंटू को लेकर मायके जा रही हूं. दरवाज़ा बंद कर लीजिए. बीते इन कुछ क्षणों ने इनकी मानसिकता पर वज्रपात का काम किया था. सब कुछ बदल गया है.

टी. वी. पर बैठक बिठायी गयी है. धर्म, आस्था, विश्वास और स्वामी जी पर मुद्दे उठाये जा रहे हैं. अशोक जो सब कुछ सच देख-सुन-समझ चुका है. आगे बढ़कर टी. वी. बंद कर देता है.

आर जेड जी ५०२, राज नगर,
पालम कॉलोनी, नयी दिल्ली-११००७७
मो. ९९५३५४१५६५

दोहे

✍ मधु प्रसाद

तेली हो चाहे यहां, अथवा राजा भोज ।
मौत किसे कब छोड़ती, करती सब की खोज ।।

चार दिनों की चांदनी, किसने देखी भोर ।
द्वारे पर कबसे खड़ी, मौत मचाये शोर ।।

मन के सारे रोग हैं, मन के सारे भोग ।
इनसे छूटा है वही, जिसने साधा योग ।।

साल नया द्वारे खड़ा, लाया ख़ुशी हज़ार ।
स्वस्थ रहो हंसते रहो, हर दिन हो त्योहार ।।

कोलाहल है शहर में, कहां खो गया मौन ।
अब अपनों को देखकर, अपने पूछे कौन ।।

नेताओं ने, देश का, बुरा किया हाल ।
करचोरी, रिश्वत करे, चारों ओर बवाल ।।

अंतर आहत हो गया, देख जगत व्यवहार ।
बूढ़ों को मिलता नहीं, अपने घर का प्यार ।।

संवेदन की हो गयी, आज देख लो हार ।
पत्थर शरमाने लगे, देख मनुज व्यवहार ।।

बहियों के खाते भरे, क्षण-क्षण रखा हिसाब ।
अंत समय जाना पड़ा, कोरी लिये क़िताब ।।

दोहों में कैसे लिखूं, जीवन भर की पीर ।
अंत प्रतीक्षा का नहीं, आंखें रही अधीर ।।

कहां हुआ अपमान, औ' कितने मिले ख़िताब ।
जीवन भर रखते रहे, केवल यही हिसाब ।।

पर्वत से राई हुआ, और हुआ अशरीर ।
मानव को देता रहा, अहम् बराबर पीर ।।

राई से भी सूक्ष्म हूं, कोई नहीं वजूद ।
गहराई है सिंधु-सी, अंतर में मौजूद ।।

कांटों में खिलता रहा, और न खोयी आब ।
तू भी जी ऐसे यहां, जैसे जिये गुलाब ।

✆ कलोल-महसाणा राजपथ, चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४. मो. ७९२३२९०८४९

कविता

"एक दिन"

✍ देवेंद्र कुमार मिश्रा

देखना एक दिन,
अपने भी दिन आयेंगे.
ये दुर्दिन अपने एक दिन,
बदल जायेंगे.
एक हाथ में रोजी होगी
एक हाथ में रोटी,
रहने को छत भी होगी
तन ढकने को कपड़ा
एक दिन सज संवरकर
हम भी ललल्न टॉप कहलायेंगे.
बीबी के साथ महंगे में,
सिनेमा और डिनर करेंगे
हम भी किसी को बख़्शीश
देकर सलाम पायेंगे,
बच्चे को भेजकर स्कूल
हम गौरव का वो क्षण पायेंगे.
सपने देखने का हक़ मिले,
सम्मान से जी पायेंगे
एक दिन तो हमारा भी
छुट्टी का होगा,
थोड़ा हम भी आराम
फरमायेंगे.
देखना एक न एक दिन
चांद हमसे पूछेगा
पहचाना, हम हैं चंदा मामा
और हम याद करने की
कोशिश में
सिर को गर्व से उठायेंगे.

✆ पाटनी कॉलोनी, भरत नगर, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म. प्र.)-४८०००१. मो. : ९४२५४०५०२२

कहानी

संतो की लाड़ो का ब्याह

✍ अशोक वशिष्ठ

सत्तरह वर्ष की थीं संतो भाभी जब उनका ब्याह हुआ था. पूरा नाम था संतोषी लेकिन उनकी सास ने अपनी सुविधा के लिए संतो बुलाना शुरू कर दिया. छरहरा बदन, ऊंचा क़द, सुघड़ देह, सुंदर नहीं लेकिन बदसूरत भी नहीं. घर के काम-काज में चतुर-चंट. गाय, भैंस की सेवा-टहल मायके से ही सीख कर आयी थीं संतो भाभी. हंसती तो सामने के दांत कुछ ज़्यादा ही दिख जाते. हंसोड़ ऐसी कि अंगने में ही लोट-पोट हो जातीं. पढ़ी लिखी इतनी कि साक्षर कहा जा सके.

पैरों की उंगलियों में चांदी के बिछुए, पांवों में महावर, माथे पर बड़ी गोल बिंदी, मांग में सिंदूर, होठों पर लाली, नाखूनों पर लाल सुर्ख नाखूनी, आंखों में काजल, कलाइयां कुहनियों तक हरी लाल चूड़ियों से भरी, कानों में लटकन और नाक पर बुलाक पहनकर जब जाड़े की गुनगुनी धूप में पीढ़े पर बैठतीं संतो भाभी तो लाड़ लड़ैया सास आकर एक अज्ञात दिशा में धू-धू कर नज़र उतारती और टोकती — ''अरी! इत्ती क्यों सजे-संवरे है? ऐसी तू कां की हूर की परी है? ख़बरदार जो इत्ती सजी-संवरी. दरवज्जे या छज्जे पै गयी तो, गोड़ तोड़ दूंगी.'' संतो भाभी कुछ पल को सहमी-सहमी हो जातीं फिर हौले से मुस्करा देतीं.

संतो भाभी को पति मिला बड़ा सुंदर, गबरू-जवान, गोरा-चिट्टा. मां-बाप का इकलौता लाड़ला. बड़ी मुश्किल से दस क़िताब पढ़ पाया, पांच-छः बार फेल होने के बाद. जब-जब बोर्ड की परीक्षा का रिजल्ट आने को होता, उस दिन घर में खीर-पूड़ी बनतीं. रिजल्ट चाहे जो हो. न जाने किस दिन पास हो जाये कन्हैया. बड़ी मन्नतों और सयाने-दीवानों के दिये गंडा-तावीज़ बांधने के बाद पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी. हां इतना अवश्य हुआ कि न जाने कौनसी घुट्टी पिलायी गयी थी, जो निकम्मापन भर गया उसकी हड्डियों में.

बचपन में गुल्ली-डंडा और पचगुट्टे का खेल खेलते-खेलते कब वह चौपड़, शतरंज और रमी खेलने लगा पता ही नहीं चला बाप को, अलबत्ता बेटे में नवाबी शौक नज़र आते तो ख़ुश होते. दौड़-धूप और अपनी पहचान के दम पर बेटे को छोटी-सी सरकारी नौकरी में लगवा दिया. बंधी-बंधाई तनख़्वाह के अलावा चीनी और मिट्टी का तेल मुफ़्त मिल जाता. ऊपर की जो कमाई होती उसे वह बीड़ी और चिलम के धुंए में उड़ा देता. ब्याह के बाद भी कोई बदलाव नहीं आया संतो भाभी के पति में.

ब्याह के डेढ़ साल बाद ही पहली प्रसव-पीड़ा हुई संतो भाभी को और कन्या को जन्म दिया. ससुर ने लाड़ लड़ाया लेकिन सास के नथुने फूल गये, माथे पर बल पड़ गये. वक़्त गुज़रता गया और लगातार तीन बेटियों की मां बन गयीं — संतो भाभी वह भी ब्याह के केवल पांच सालों में.

बाईस-तेईस साल की उम्र, तीन-तीन दूध पीती बच्चियों की परवरिश, ऊपर से घर-घेर के सारे काम. कोल्हू का बैल बनकर रह गयीं संतो भाभी. सास ख़ुश न थी संतो भाभी से. सास के बोल जैसे ज़हर बुझे तीर — ''नास पीटी! बंस मिटाने आईए का? बेटी के ऊपर बेटी जनती जा रईए. अरी देख! यहां तो एक जना सो वह भी पूत. कम से कम बंस तो चलावेगा. अरी करमजली! वो जनानी बी का जिन्ने पूत ना जना. अरी! बुढ़ापे में मां का धी-जमाई के आगे हाथ पसारेगी. कुलच्छिनी, एक पूत तो जन जो मुखाग्नि दे सके. बुढ़ापे-रड़ापे की लाठी बन सके.''

संतो भाभी सुबक-सुबक कर रोती रहतीं और सोचती कि इसमें उनका क्या कसूर. उन्हें याद आती अपनी मां की कही बात जो उसने ब्याह के समय कही थी. मां ने कहा था, ''बिटिया, औरत और धरती एक सी. दोनों माता कहलावें. धरती तपती धूप, बरसते ओले, गिरता पारा, आंधी, तूफ़ान, भूचाल, बाढ़, सूखा सब सह लेवे बिना किसी उज्र के. धरती का सीना चीरे हैं किसान तो भी धरती अन्न का दाना देवे है बदले में, धरती की तरियां धीरज रखियो मेरी लाड़ो.'' मां

१५ अक्तूबर १९५३
धर्मपुर, बुलंदशहर (उ. प्र.);
एम. ए. (हिंदी, इतिहास, राजनीति शास्त्र), एम. एड.

: लेखन :

कविता, लघुकथा, कहानी, सामाजिक एवं शैक्षणिक लेख.

: प्रकाशन :

मुंबई के प्रथम हिंदी सांध्य दैनिक 'निर्भय पथिक' में लगातार दस वर्षों तक सामयिक विषयों पर आधारित छ: पंक्तियों की छंद 'खरी-खरी' का प्रकाशन.

: संपादन :

'विधायक गुरू' एवं 'राष्ट्र आराधक' ग्रंथों का संपादन.

: संप्रति :

स्वामी विवेकानंद कनिष्ट महाविद्यालय (कुर्ला-मुंबई) के प्रधानाचार्य पद से निवृत्ति के बाद वर्तमान में स्वतंत्र लेखन

की कही बात याद कर संतो भाभी सोचतीं — ''धरती तो वही उगाती है जैसा बीज उसमें बोया जाता है. जब औरत और धरती एक जैसी तो बेटा हो या बेटी.'' ऐसा सोचते ही अपनी तीनों बेटियों को छाती से चिपटा लेतीं.

चौथी प्रसव पीड़ा का नतीज़ा भी एक और कन्या लेकर आया. भग्गो दाई ने नीली छतरी वाले की ओर हाथ उठाकर कहा, ''एक और देवी आ गयी. जैसी हरि इच्छा.'' सुनकर सास ने अपना कपाल ठोका और ससुर हौले से मुस्कराकर रह गये.

पुत्र की चाह में दो बार गर्भ जाता रहा लेकिन आख़िरकार सास की गुहार सुन ही ली देवी-देवताओं ने. अबकी बार संतो भाभी ने बेटे को जन्म दिया. आ गया 'बंस' का नाम आगे बढ़ाने वाला, बुढ़ापे और रड़ापे की लाठी बनने वाला. ससुर ने अपनी दुनाली बंदूक दाग़ी हवा में, थाली बजी, तासे बजे. पूरे गांव को न्यौता गया दष्ठौन के दिन दावत के लिए. लेकिन संतो भाभी की सेहत बहुत गिर गयी.

कुछ ही महीनों बाद सास ने फिर कहना शुरू कर दिया, ''अरी! जैसे एक पूत जना वैसे ही एक और सई. कम ते कम दो भईयों तो हों. पीठ भरी रहेगी. एक अकेलौ इत्ती भैनों का छोछख-भात कैसे निभा पावेगो?''

एक भाई की पीठ भारी करने की चाह में एक और कन्या आ गयी. इसके बाद संतो भाभी न जाने कब तांगे में बैठकर शहर गयीं और सरकारी अस्पताल से कॉपर-टी लगवा कर देर शाम वापस आ गयीं. केवल पति को बताया सो यहीं भूल कर गयीं संतो भाभी. पति ने अपनी मर्दानगी का सबूत दे डाला. लात, घूंसों से पिटाई कर डाली. धरती की तरह सब झेल गयीं संतो भाभी.

लेकिन विधाता को तो कुछ और ही मंजूर था. संतो भाभी का जी फिर मिचलाने लगा. फिर कच्ची अमियां चोरी से खाने लगीं चटकारें लेकर. जब देनेवाला नीली छतरी वाला है तो धरती पर जन्मे इंसान की क्या बिसात! अस्पताल की रोकथाम फेल हो गयी.

फिर भग्गो दाई को बुलाया गया. ग़जब. सास की सुन ली ठाकुर जी ने. आ गया दूसरा पोता. पांच बेटियों और दो बेटों की मां, संतो भाभी अपनी छाती का दूध पिलाते-पिलाते सूख कर पंजर भर रह गयीं. हां, आंगन बच्चों की चिल्लपों से भर गया. फूल-सी सुंदर बच्चियों को देख-देख संतो भाभी ख़ुश होतीं, उतना ही जितना ख़ुश होतीं दो बेटों को देखकर.

इस बीच बड़ी तेज़ी से घटनाक्रम घटित हुआ. पति की लापरवाही के चलते उसकी नौकरी जाती रही. ससुर की जमा पूंजी ख़त्म हो गयी. घेर में भैंस-गाय बंधना बंद हो गया. दुनाली बंदूक बेच दी गयी. गृहस्थी की गाड़ी चलाये रखने के लिए ससुर ने ऐसे-ऐसे काम किये जो कभी सपने में भी नहीं सोचे होंगे. लेकिन ग्यारह पेट और कमाने वाले केवल दो बूढ़े हाथ. भला फटा टाट भी कहीं बारिश की बौछारों को रोक पाया है?

बेटे का बोझ कम करने के लिए ससुर ने जैसे-तैसे संतो भाभी की सबसे बड़ी बेटी के हाथ पीले कर दिये. सिर्फ़ चौदह वर्ष की उम्र में. इसी चिंता में ससुर का दम निकल गया कि आगे बच्चों का क्या होगा. ससुर की मृत्यु के बाद और एक बेटी का ब्याह हो गया.

संतो भाभी की तीसरी बेटी चंपा का ब्याह होना तय हुआ था. देवर प्रमोद का भी गांव आना हुआ. देवरानी शांति भी साथ में थी. ब्याह के दो दिन पहले ही पहुंच पाये ये लोग. उन दिनों संतो भाभी के हाथों में थी घर की कमान. संतो भाभी की सास बूढ़ी हो चली थीं, घुटनों ने साथ छोड़ दिया था. एक कोठरी में चारपाई पर था उनका ठिकाना. संतो भाभी का पति वक़्त-बेवक़्त देसी दारू पिये रहता.

गांव में जब से शराब का सरकारी ठेका खुला था तब से दारू मिलना बड़ा आसान हो गया था. प्रतिष्ठित लोगों का गांव हर एक जाति के लोगों का गांव. लेकिन आश्चर्य कि शराब के ठेके का विरोध करनेवाला कोई नहीं. कोशिश की थी गांव के हाईस्कूल के हेडमास्टर ने. गांव के प्रतिष्ठित लोगों से भी मिला था हेडमास्टर. लेकिन सहयोग नहीं मिला उसे किसी का भी. लगा था कि जैसे सब तटस्थ रह कर तमाशबीन बने रहना चाहते थे. दो-तीन सप्ताह बाद ही भोर सबेरे ठेकेदार के आदमियों ने चाकुओं से गोद डाला था हेडमास्टर को और उसे मरा जानकर छोड़ गये थे. बड़ी जीवटवाला था वह हेड मास्टर जो बच गया. लेकिन उसका विरोध का स्वर ठंडा पड़ गया. जान किसे प्यारी नहीं होती?

पियक्कड़ों ने जैसे चैन की सांस ली. अब दारू लेने शहर नहीं जाना पड़ता था. अपनी जमात बढ़ाने के लिए आदतन पियक्कड़ों ने नौसिखिया युवाओं को अपने गिलास में से पिलानी शुरू कर दी. इस जमात में संतों का पति भी शामिल हो चुका था.

मौक़ा देखकर संतो भाभी प्रमोद और पत्नी शांति को इशारे से बुलाकर ले गयीं अंदर के कोठे में. कोठे में एक ओर वह सामान रखा था जो शादी में दिया जाना था. हर चीज़ दो-दो के जोड़े में नज़र आयी. एक जोड़ा फोल्डिंग पलंग, एक जोड़ा बिस्तर, दो सेट बर्तनों के, दो टीन के बक्से, दो सिंगारदान और भी बहुत कुछ. प्रमोद के पूछने पर संतो भाभी मुस्कराकर बोलीं, ''ऐसे का देखते हैं? एक संग दो माढ़ये (मंडप) बनेंगे एक ही आंगन में, चंपा और बेला दोनों का ब्याह होगा एक संग. दो बारात आयेंगी अलग-अलग गांवों से. सब इंतज़ाम हो गया है. चिंता में मत रहना. तुम्हारे भैया तो पीये-खाये पड़े होंगे कहीं. तुम भी, लाला, आज चैन की नींद ले लेना. अगले दो दिन आराम कहां मिलेगा? बड़े काम पड़े हैं.'' एक ही सांस में संतो भाभी ने बातों का पिटारा खोल दिया.

देवर ने तनिक बुरा मानते हुए कहा, ''पहले नहीं बताया. किसका फ़ैसला है यह?''

संतो-भाभी मुस्कराकर बोलीं, ''लाला, नहीं जानती बुरा है या भला, पर फ़ैसला तो मेरा ही है. तुम्हारे भैया ने दो बीघा ज़मीन बेची एक लाख दस हज़ार में, चालीस-पचास का ख़र्च आना था एक ब्याह में. बाकी से एक दुकान खोलने की बात कर रहे थे.''

''तो अच्छा तो होता. दूकान खोलने से कुछ आमदनी तो शुरू होती.''

''क्या ख़ाक दुकान खोलते? पिन्नी की दारू पीकर सुध-बुध तो रहती नहीं है तुम्हारे भैया को. कहां हगा, कहां मूता इसका तो होश रहता नहीं है. देखा नहीं, कैसी हो गयी है काया! दारू ने सब सूंत कर रख लिया है. दुकान क्या खुलती, मरी दारू पर फुर्र हो जाता सब रुपैया. सो मैंने फ़ैसला लिया कि चंपा के साथ-साथ बेला के भी हाथ पीले हो जायें लगे हाथों, कम से कम भर पेट खाने को और बदन ढंकने को गत के लत्ते कपड़े तो देगा जो ब्याह कर ले जायेगा. मां के साथ औरों की मेहनत-मजूरी तो ना करनी पड़ेगी. रह जायेगी पांचवी सुमन सो अभी तो वह दस की हुई है अबके सावन में.''

''लेकिन बेला भी तो अभी सिर्फ़ पंद्रह की हुई होगी. इतनी कच्ची उम्र में...?''

''लाला, ब्याह के बाद हर उमिर की लड़की औरत बन जाती है. पंद्रह और सत्तरह का भेद नहीं रह जाता. वैसे भी ग़रीब की छोरी जंगल के बांस की पोरी की तरह बड़ी जल्दी जवान हो जाती है. और एक बात, लाला. अब तुम्हारे गांव में पुरानी-सी बात नहीं रही. अब तो दारू के नसे में टुन्न जवान छोरे सांड की तरह मुंह उठाये फिरते हैं कि कब कोई मिले और कब उसे धर दबोचें. पहले बात और थी. पहले हर बूढ़ी को मां या दादी, हर घूंघटवाली को बहू और हर छोरी को बहन-बेटी मानता था पूरा गांव. अब आंखों में वह पानी नहीं रहा, लाला. लाज बचाना बड़ा मुश्किल हो गया है. मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं, लाला. हो जाने दो यह काम.''

प्रमोद ने सहमति में सिर हिलाया और कोठे से बाहर निकल आया. घर से बाहर आकर पगडंडी पर चलता हुआ खेतों के बीच जा पहुंचा. अगहन का महीना था. खेतों में

पीली सरसों फूली थी. लग रहा था जैसे धरती ने पीली चुनरिया ओढ़ ली हो. हवा में ठंडक बढ़ गयी थी. पखेरू झुंड बनाकर अपने घरोंदों की ओर उड़ रहे थे. सूरज भी जैसे सर्दी के असर से प्रभावित होकर जल्दी ढल गया था. प्रमोद के मन की उथल-पुथल भी सहज हो चली थी. सोच रहा था ठीक ही तो कह रही हैं संतो भाभी. अपनी औलाद का कभी किसी ने बुरा चाहा है?

अगले दिन घर में बड़ी चहल-पहल रही. चंपा और बेला दोनों को हल्दी चढ़ाई गयी. संतो भाभी ने प्रमोद को बुलाया और एक लिस्ट बनवायी सामान की जो शहर जाकर लाना था.

ब्याह वाले दिन प्रमोद की व्यस्तता कुछ ज़्यादा ही बढ़ गयी — हलवाई को सामान देना, कुम्हार के यहां से कुल्हड़-सकोरे मंगवाना, पत्तल धुलवा कर रखना, रात में रोशनी के लिए जेनरेटर मंगवाना, मंडप के लिए केले के खंभे, हवन के लिए आम की लकड़ी, नाते-रिश्तेदारों के बैठने और सोने का इंतज़ाम और दो-दो बारातों की अगवानी, चाय-नाश्ते की व्यवस्था करवाना.

दोनों बारातें बारी-बारी से दरवाज़े पर आयीं. स्वागत-सत्कार हुआ. दोनों बारातों के बारातियों ने एक साथ दावत खायी. आधे से ज़्यादा बाराती शराब के नशे में दिखायी दिये.

भांवरों का समय पंडित जी ने रात के दूसरे पहर का बताया था. दिन भर की थकान प्रमोद पर हावी थी सो न जाने कब वह एक कंबल ओढ़े एक कोने में सो रहा.

अचानक जैसे उसे किसी ने झिंझोड़ कर उठाया. कंबल खींचा. उसने देखा संतो भाभी थीं.

संतो भाभी बोलीं, ''लाला! तुम यहां नींद निकाल रहे हो और वहां कसाई मेरी बछिया को छीने लिये जा रहे हैं. रोको उन्हें, नहीं तो अनर्थ हो जायेगा.''

देवर का हाथ पकड़कर संतो भाभी आंगन में ले गयीं. वहां का दृश्य कुछ अटपटा–सा था. जिस मंडप में अभी-अभी संतो भाभी की चौथी बेटी बेला के फेरे पड़े थे उसी मंडप के नीचे पंडित जी एक और ब्याह की तैयारी कर रहे थे. बेला के ससुराल पक्ष के कुछ लोग बैठे थे वहां. बेला का एक देवर मंडप के नीचे दूल्हा बना बैठा था. संतो भाभी की पांचवीं और आख़िरी बेटी सुमन नया शॉल लपेटे चिपटी खड़ी थीं देवरानी के साथ. बच्ची कांप रही थी थर-थर. डर से कि ठंड से, कह पाना मुश्किल था. प्रमोद ने पंडित जी की ओर देखा. पंडित जी बोले — ''भैया, मुझसे न होगा ये काम. मैंने तो लाख समझाया तुम्हारे भाई को. वह सुनता ही नहीं. इतनी फूल-सी बच्ची का ब्याह करने की बात कर रहे हैं. मैं इस पाप का भागीदार नहीं बन सकता.'' कहकर पंडितजी अपना सामान समेटने लगे.

बेला के ससुर बोले, ''समधीजी, हम चाहते हैं कि बेला की छोटी बहन भी हमारे घर में आये. रही बात उसकी उम्र की सो विदा हम दो साल बाद करवा लेंगे.''

प्रमोद के बोलने से पहले ही संतो भाभी बोल उठीं — ''नहीं, यह हरगिज़, हरगिज़ नहीं होगा. कहे देती हूं. आपके एक बेटे के साथ हमारी बेला का ब्याह हो गया सो वह आपकी हुई. आप बेला को विदा करवा कर ले जायें.''

प्रमोद ने भाभी की बात का समर्थन किया — ''बिलकुल ठीक कहती हैं भाभी. ये बात नाज़ायज और ग़ैर कानूनी है. अभी वह है ही कितनी बड़ी? दस साल की बच्ची का ब्याह करने को कहते शर्म नहीं आती आप लोगों को?

तभी जैसे संतो भाभी के पति की मर्दानगी जाग उठी हो. बोला, ''तू कौन होता है? मेरी बेटी दस की हो या बीस की. मैं चाहे जो फ़ैसला करूं. तुझे क्या? पंडित जी, तुम कराओ फेरे.'' संतो भाभी के पति के मुंह से शराब का भभका निकलकर प्रमोद की सांसों में घुल गया.

उसने सख़्त निग़ाहों से पंडित जी की ओर देखा पंडित जी सहम गये.

''यदि ऐसा है तो तुम लोग कराओ फेरे, मैं चला पुलिस चौकी. धरे जाओगे सब लोग नाबालिग लड़कियों का ब्याह करने के जुर्म में.''

''लाला, मैं भी चलती हूं तुम्हारे संग. पुलिस वाले एक मां की गुहार ज़रूर सुनेंगे.'' कहकर संतो भाभी भी दरवाज़े की ओर बढ़ीं.

''कौन से जन्म की दुश्मनी निकाल रहा है तू मेरे साथ? कहां से लाऊंगा मैं फिर से इतना रुपया इसका ब्याह करने के लिए? खाने-पहनने के तो लाले पड़ रहे हैं.'' संतो भाभी का पति छोटे भाई की ओर देखते हुए बोला.

बेला के ससुर को सहारा मिला. बोला — ''यही

तो हमने सोचा था. दोनों बहनें एक ही घर में रहेंगी. मन भी लगा रहेगा. और फिर एक पाई ख़र्च किये बिना पार पा जाओगे बेटी की ज़िम्मेदारी से. तुम्हारा बोझा भी हल्का होगा.''

संतो भाभी की आंखों से जैसे चिंगारियां निकल रही थीं. बोली — ''ख़बरदार जो मेरी बेटी को बोझ कहा तो. इसके बाप की तो मैं कहती नहीं, मेरे तो जिगर का टुकड़ा है मेरी लाडो. अपनी ही कोख से जन्म दिया है मैंने इसे. और एक बात मेरी भी सुन लो. बेटी कभी भी मां-बाप पर बोझ नहीं होती. हां, ज़िम्मेदारी ज़रूर होती है. बोझ तो वह बनती है ससुराल वालों पर. तभी तो उसे जला कर या विष देकर मार दिया जाता है कभी दहेज के नाम पर तो कभी और किसी बहाने.''

संतो भाभी का पति फिर गरजा — ''अरी! अपना मुंह बंद भी रखेगी? ज़्यादा चबड़-चबड़ तो कर मत. औरत है औरत की तरह रह. कहां से लायेगी फिर इतना रुपया? कैसे करेगी इसका ब्याह? कुंवारी रखेगी क्या इसे जन्म भर?''

संतो भाभी बिफरते हुए बोलीं — ''बड़े आये मर्द कहीं के? औरत हूं तभी तो औरत की बात समझती हूं. ज़्यादा मुंह मत खुलवाओ. रही बात इसके ब्याह की सो ये जाने रखो कि बेटी ग़रीब से ग़रीब की भी कुंवारी ना रहती. हां, अच्छे-अच्छों के बेटों को अनब्याहे रहते बहुतेरा देखा है.'' कहते हुए संतो भाभी ने बेला के ससुर की ओर देखा.

संतो भाभी का यह रूप प्रमोद पहली बार देख रहा था. कब का रुका हुआ बांध जैसे आज टूट गया हो. उसे यह बड़ा अच्छा लगा कम पढ़ी-लिखी संतो भाभी के मुंह से ऐसी गंभीर बातें सुनकर. वैसे भी ज्ञान किसी डिग्री का मोहताज कहां होता है?

प्रमोद ने देखा संतो भाभी का पति फफक-फफर कर रोते हुए जहां खड़ा था वहीं बैठ गया धम्म से. वह नहीं समझ पाया कि यह उसकी मुफलिसी थी या मज़बूरी. बेला के ससुर को एक ओर ले जाकर प्रमोद ने समझाया — ''आप जो चाहते हैं वह हरगिज़ नहीं हो सकता. अब हम और आप रिश्तेदार बन चुके हैं. एक दूसरे का सम्मान करना चाहिए हमें. आप तो ज़मीन-ज़ायदाद वाले हैं. आपके बेटे के लिए तो कोई भी अपनी बेटी ख़ुशी-ख़ुशी देगा.'' अपनी प्रशंसा सुन कर बेला का ससुर ख़ुश हुआ.

☐

इस सब में भोर हो गयी थी. तूफ़ान गुज़र जाने के बाद एक नयी सुबह. बारी-बारी से अपनी दोनों लाड़ली बेटियों को विदा किया संतो भाभी ने. अपनी दोनों बहनों को ससुराल भेज कर दिन भर गुनगुनी धूप में सोती रही दस वर्षीय सुमन. संतो भाभी के चेहरे पर थकान का नामो-निशान न था. बड़ी तन्मयता से रिश्तेदारों को विदा करने में लगी थीं संतो भाभी.

सी-६०३, सागर रेसीडेंसी, सेक्टर-२७,
नेरुल (पूर्व), नवी मुंबई-४००७०६
मो. ९८६९३३७६१८

लघुकथा

अनुकरण

आनंद बिल्थरे

शाला में राकेश के अनुशासनहीनता का नोटिस पढ़कर सावित्री मां, क्षोभ और ग्लानि से भर गयी.

दूसरे दिन समय पाकर उसने इसकी चर्चा अपने पति से की. राजनीति में दिन प्रतिदिन उतार चढ़ाव के कारण राधेश्यामजी का मूड वैसे ही ख़राब चल रहा था. उन्होंने चीख़ कर राकेश को बुलाया.

– तुम स्कूल में पढ़ाई करने जाते हो या बदमाशी करने. अब हम, क्या जबाब दें तुम्हारे प्रिंसीपल को.

राकेश चुप रहा.

– अरे, एक हमारा ज़माना था. स्कूल मंदिर था हमारे लिए. बताओ, ऐसा क्यों किया तुमने ?

राकेश, तब भी चुप रहा और धीरे से आठ दिन पहले का समाचार पत्र लाकर उनके सामने रख दिया.

समाचार पत्र में राधेश्यामजी को सदन में घोर अनुशासनहीनता और हंगामा करने के कारण उनके साथियों सहित मार्शल द्वारा बाहर फिंकवा दिये जाने का सचित्र विवरण मुखपृष्ठ पर विस्तार से प्रकाशित था.

प्रेमनगर, बालाघाट-४८१००१(म. प्र.).
मो. ८३५८९२१००५

: प्राप्ति-स्वीकार :

जल तू जलाल तू (उपन्यास) : **प्रबोध कुमार गोविल,** दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५. मू. २०० रु.

कोलाज (कहानी संग्रह) : **सतीश दुबे,** ज्योति प्रकाशन, ई १०/६६०, उत्तरांचल कॉलोनी, गाज़ियाबाद-२०११०२. मू. ३९० रु.

चाक पर मिट्टी (क. संकलन) : **डॉ. निरुपमा राय,** नमन प्रकाशन, ४२३१/१, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २५० रु.

राजस्थान की लघुकथाएं (ल. सं.) : **अनिल शूर आज़ाद,** नवशिला प्रकाशन, श्रीराम कॉलोनी, नांगलोई, नयी दिल्ली-११००४१. मू. २०० रु.

सपने हुए कपूर (दोहा सं.) : **मधु प्रसाद,** राहुल प्रकाशन, सी-७४, साईधाम टेनामेंट, वस्वाल रोड, अहमदाबाद-३८२४१८. मू. २०० रु.

धनंजय दोहावली (दो. सं.) : **धनंजय मिश्र,** निराली दुनिया पब्लिकेशन्स, बाज़ार गेट, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. ५० रु.

अनाम के प्रति एक शोक गीत (गीत) : **शोभनाथ शुक्ल,** गली नं. १४, पहला पुश्ता, सोनिया विहार, दिल्ली-११००९४. मू. २५० रु.

चुप का गीत (गीत) : **जसप्रीत कौर फ़लक,** अयन प्रकाशन, १/१२, महरौली, नयी दिल्ली-११००२०. मू. २२० रु.

सांसों की सरगम (हाइकू सं.) : **डॉ. रमा द्विवेदी,** हिंद युग्म, १ जिया सराय, हौज़ ख़ास, नयी दिल्ली-११००१६ मू. १५० रु.

बड़ी होती लड़की (का. सं.) : **डॉ. प्रद्युम्न भल्ला,** प्रेम साहित्य प्रतिष्ठान, ५०८, सेक्टर-२०, शहरी संपदा, कैथल-१३६०२७. मू. १५० रु.

क़ैद में उड़ान (ग़. सं.) : **अक्षय गोजा,** मीनाक्षी प्रकाशन, एम. बी., ३२/२बी, गली नं. २, शकरपुर, दिल्ली-११००९२. मू. १०० रु.

दाग़ अच्छे हैं (का. सं.) : **सतीश चंद्र शर्मा 'सुधांशु',** राही प्रकाशन, कल्पतरू, ज़ियाखेल, शाहजहांपुर-२४२००१. मू. २०० रु.

निवेदन

रचनाकारों से

*"**कथाबिंब**" एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि **विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.***

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं काग़ज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा. रचना के साथ कवरिंग लेटर का होना आवश्यक है. अन्यथा रचना पर विचार करना संभव नहीं होगा.

३. सामान्यत: प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

४. आप ई-मेल से भी रचनाएं भेज सकते हैं. ई-मेल का पता है : kathabimb@yahoo.com. रचना की "डॉक" फ़ाइल के साथ "पीडीएफ" फ़ाइल भी भेजें. साथ में यह घोषणा भी होनी चाहिए कि विचारार्थ भेजी रचना निर्णय की सूचना प्राप्त होने तक किसी किसी अन्य पत्रिका मे नहीं भेजी जायेगी.

आमने-सामने

'सृजन वही जो संवेदनशीलता व सकारात्मक सोच को उजागर करे'

✍ डॉ. सुरेंद्र गुप्त

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया और माला वर्मा से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है डॉ. सुरेंद्र गुप्त की आत्मरचना.

जब से भाई डॉ. अरविंद जी का 'आमने-सामने' कॉलम के लिए आत्मकथ्य लिखने का निर्देश आया है, तभी से दिल में हलचल सी मची हुई है, एक कौतूहल भी बना हुआ है कि सत्तर वर्षों की इस जीवन यात्रा के विभिन्न पड़ावों में से स्मृतियों के किन-किन विशिष्ट पलों को सहेजकर आपके सामने प्रस्तुत करूं. बचपन, घर-परिवार, शिक्षा, नौकरी, लेखन आदि की कितनी ही दुखद एवं सुखद स्मृतियां अभी तक मन-मस्तिष्क को मथती रहती हैं. जैसे-तैसे उनमें से जो कुछ भी ठीक लगा आपसे रू-ब-रू हूं.

मेरा जन्म एक बहुत ही साधारण परिवार में हरियाणा के अंबाला जिले के कालका नामक एक छोटे से क़स्बे में हुआ. पिता जी एक छोटी सी दुकान चलाते थे, जिसे अक्सर 'खोखे' की संज्ञा दी जाती थी. वह खोखा अपने सिर पर पूरे परिवार (तीन भाई, दो बहनों, माता-पिता) का बोझ ढो रहा था. ढोते-ढोते जब हांफने लगा तो उसे बेच दिया गया.

परिवार में, मैं ही सबसे छोटा था. मेरे जन्मते ही प्रसूति-काल के दौरान, मां की टांगों की शक्ति चली गयी. उनकी दोनों टांगें घुटनों से जुड़ गयी थीं. परिणामस्वरूप उन्होंने अपना शेष जीवन घर के बीच चारदीवारी में पंजों के बल घिसट-घिसट कर ही बिताया. पीढ़े पर बैठे-बैठे अथवा रस्सा (बाण) की चारपाई पर जुड़ी टांगों से कमर के बल लेटे-लेटे अधकचरी नींद में तेरह वर्षों का कारावास काट दिया.

पिता जी को सभी जानने वाले 'भक्त जी' कह कर पुकारते थे. पूर्णमासी, जन्माष्टमी, शिवरात्रि या अन्य कोई भी पर्व हो, उन्हें उपवास रखने ही होते थे. इनके अलावा प्रत्येक रविवार, सोमवार, मंगलवार तथा वीरवार (सप्ताह में चार दिन) नियमित रूप से व्रत रखते थे. जब से मैंने होश संभाला तभी से उन्हें व्रत रखते पाया. और व्रत रखने का सिलसिला अंतिम सांस तक चला. व्रत के दिनों में वे एक

५ मई १९४३
कालका (हरियाणा);
एम. ए., पीएच-डी (हिंदी),
स्नातकोत्तर डिप्लोमा अनुवाद (पंजाब वि.वि., चंडीगढ़),
स्नातकोत्तर डिप्लोमा, पत्रकारिता (कुरुक्षेत्र वि.वि.)

: लेखन :

प्रसाद, यहां सब चलता है (लघुकथा संग्रह),
छत खुले आसमान की (कहानी-संग्रह).

: प्रकाशन :

कहानी, लघुकथा और कविता में पिछले चार दशक से सार्थक हस्तक्षेप. अनेक कहानियां, कई कहानी-संग्रहों में संकलित. कहानियों, लघुकथाओं, कविताओं तथा व्यंग्य आदि का राष्ट्रीय स्तर की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं यथा – सारिका, कादंबिनी, साक्षात्कार, कथाबिंब, शुभ तारिका, सरिता, मुक्ता, हरिगंधा, पंजाब केसरी, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, दैनिक ट्रिब्यून, कथा संसार, संकल्प (हिंदी अकादमी, हैदराबाद), प्राची, नयी दिशा, वीणा. सरस्वती सुमन, प्रेरणा, संचयन. राजस्थान पत्रिका, शब्द शिल्पी, शब्द सरोकार, सुमन सागर, पंजाब सौरभ आदि में नियमित प्रकाशन.

: अनूदित पुस्तकें :

प्रशांत चंद्र महलनवीस, बाल गंधर्व (नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया)

: पुरस्कार / सम्मान :

पंजाब कला साहित्य अकादमी, जालंधर (पंजाब) द्वारा विशिष्ट अकादमी सम्मान से सम्मानित २०१३; हरियाणा प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन सिरसा द्वारा श्री अशोक दीवान स्मृति सम्मान : २०११; अखिल भारतीय अवसर साहित्य प्रतियोगिता वर्ष १९८५ में लघुकथा पतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार; 'नया आकाश' पत्रिका द्वारा लघुकथा प्रतियोगिता में मोहन लाल शाह स्मृति पुरस्कार : १९८६

: विशेष :

दैनिक ट्रिब्यून (चंडीगढ़) तथा मासिक पत्रिका 'शुभ तारिका' (अंबाला छावनी) के लिए पुस्तकों तथा पत्र- पत्रिकाओं की समीक्षाओं का नियमित रूप से लेखन.

: प्रसारण :

आकाशवाणी रोहतक तथा कुरुक्षेत्र से लेख, कहानियां तथा लघुकथाओं का नियमित प्रसारण.

: विशेष :

लघुकथाकार सुरेंद्र गुप्त पर कुरुक्षेत्र वि. वि. की एम. फ़िल. की उपाधि हेतु शोध.

: संप्रति :

डाक विभाग से सहायक निदेशक (राजभाषा) के पद से सेवानिवृत्त, स्वतंत्र लेखन.

ही समय खाना खाते थे. नमक न लेकर मीठा भोजन ही करते थे. सूर्य ग्रहण अथवा चंद्र ग्रहण के समय सूतक लग जाता है, अत: इसी कारण से वे घर से थोड़ी सी दूरी पर स्थित बावड़ी में जाकर स्नान अवश्य करते थे. एक बार तो रात्रि में चंद्र ग्रहण के समय बहुत ठंड थी, तब भी स्नान करने चले गये और एक सप्ताह तक बिस्तर से नहीं उठे थे. इसी प्रकार श्रीकृष्ण जन्म के उपरांत बावड़ी में स्नान करते, फिर उपवास तोड़ते थे. बहुत ही सरल हृदय, अंदर-बाहर से एक, जिसे जो कहना चाहा, कह दिया. शायद उनका यह सरलपन, भक्तिभाव ही था जिसके कारण उन्होंने एक दिन ब्रह्म मुहूर्त में, भक्ति मुद्रा में बैठे-बैठे, अपना शरीर त्याग दिया तथा पंचतत्व में विलीन हो गये.

कालका कोई ख़ास बड़ा शहर नहीं था. एम. बी. हाई स्कूल था, वहीं से मैंने दसवीं पास की. पास में ही चंडीगढ़ एक नये शहर के रूप में विकसित हो रहा था. अत: चंडीगढ़ के राजकीय महाविद्यालय में इंटर में प्रवेश लिया. उसके बाद नौकरी की तलाश शुरू हुई. जल्दी ही डाक विभाग में डाक सहायक के रूप में शिमला (हि. प्र.) में कार्यभार संभाला. वहीं पर नौकरी के साथ-साथ सायंकालीन महाविद्यालय से बी. ए. तथा रीजनल सेंटर (पंजाब वि. वि.) से एम. ए. और फिर पीएच. डी. कर डाली. इसके तुरंत बाद हरियाणा डाक सर्किल अंबाला में हिंदी सुपरवाइज़र के पद पर नियुक्ति हो गयी. अंबाला, हिंदी सुपरवाइज़र के पद पर आने से पहले दो-एक वर्ष चंडीगढ़ में लगाने पड़े. यहीं से पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ से अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा किया. फिर हरियाणा डाक सर्किल

अंबाला में नियुक्ति हो जाने पर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा भी किया. डाक विभाग से ही सहायक निदेशक (राजभाषा) के पद से सेवानिवृत्ति हुई. एक बात का मुझे अपने ऊपर गर्व रहा है कि जब मैंने डाक विभाग में सर्विस ज्वाइन की, उस समय मेरी शैक्षणिक योग्यता केवल इंटर थी. डाक विभाग जैसे व्यस्ततम विभाग में जहां आठ घंटे काम करना होता है और पब्लिक डीलिंग रहती है, सायंकालीन महाविद्यालय से बी. ए. तथा सर्विस के साथ एम. ए. और फिर पी-एच. डी. सचमुच में, जब भी सोचता हूं, आश्चर्य से भीग जाता हूं.

जब नौकरी करते कुछ समय बीत गया तो वैवाहिक जीवन में पदार्पण की तैयारियां शुरू हुईं और १९७२ में विवाह-बंधन में बंध गये. पत्नी अध्यापिका थीं. दो पुत्र हुए. ज्येष्ठ पुत्र हरियाणा विद्युत विभाग में कार्यकारी अभियंता तथा उससे छोटा इंज़ीनियरिंग कॉलेज के एम. सी. ए. विभाग में विभागाध्यक्ष है. दोनों की शादी हो चुकी है अब पोते-पोतियां भी आंगन की शोभा बढ़ा रहे हैं. उनसे बतियाना, उनकी बातें सुनना बहुत ही अच्छा लगता है. लगता है बस यही जीवन का आनंद है बाक़ी सब कुछ झूठ है.

आजकल बहुत अच्छा लगता है, जब बच्चे ड्रेस पहनकर, टाई लगाकर रिक्शा/ऑटो में बैठकर स्कूल जाते हैं. उनके हाथ में क़िताबों/कॉपियों से भरा बैग होता है. साथ में पानी की बोतल होती है. पब्लिक स्कूलों का युग है न. अपना ज़माना याद आता है — हाथ में बैग की जगह थैला होता था. थैले में स्लेट-बत्ती, तख़्ती, क़लम-दवात होती थी और एक किलोमीटर के लगभग पैदल चल कर स्कूल पहुंचते थे. उस समय अंग्रेज़ी छठी जमात से लगती थी. अंग्रेज़ी लिखने के लिए 'जी' की निब आती थी, चार लाइनों की कॉपी पर निब होल्डर में लगा कर स्याही से लिखा जाता था. जिस किसी बच्चे के पास 'जी' की निब नहीं होती थी उसकी ख़ूब पिटाई होती थी. आजकल की तरह कॉपियों पर पेन्सिल से नहीं लिखा जाता था. गणित के सवाल स्लेट पर निकाले जाते थे, इसी प्रकार हिंदी, तख़्ती पर लिखी जाती थी. सुलेख की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था. लिखने के बाद तख़्ती को गाची से पोछा जाता था. बड़ी सहज-सी ज़िंदगी थी, पढ़ाई का स्तर आज से बहुत ऊंचा था.

यदि यह कहा जाये कि मेरे भीतर लिखने की कोई जन्मजात प्रतिभा या पैतृक संस्कार रहे होंगे, तो ऐसा कदापि नहीं. हां, एक बात अवश्य कहूंगा, मैंने पढ़ा बहुत है. अपने शोधकार्य के दौरान जिन-जिन उपन्यासकारों की कृतियों को खंगालने का अवसर मिला, उनमें यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त, भैरवप्रसाद गुप्त, भगवतीचरण वर्मा, फणीश्वर रेणु, शिवप्रसाद सिंह, रांगेय राघव, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, अमृतलाल नागर, यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', रामदरश मिश्र, नरेश मेहता, गिरिराज किशोर, गिरीश अस्थाना तथा श्रीलाल शुक्ल प्रभृति उल्लेखनीय हैं. बंगला के विख्यात उपन्यासकार बिमल मित्र, ताराशंकर बंधोपाध्याय तथा महाश्वेता देवी की कृतियों का भी ख़ूब आनंद लिया. बिमल मित्र का 'ख़रीदी कौड़ियों के दाम' तथा नरेश मेहता के 'उत्तर कथा' ने विशेष छाप छोड़ी. सोलन में जब मैं उप डाकपाल के पद पर था, प्राणी विभाग में कार्यरत श्री रवींद्रनाथ बैनर्जी से मुझे बंगला सीखने का अवसर प्राप्त हुआ. बाद में कहानियों का बंगला अनुवाद भी किया जो तत्कालीन समाचार पत्रों, हिंदी मिलाप, वीर प्रताप, पंजाब केसरी आदि में प्रकाशित हुईं.

रचना प्रक्रिया या सृजन प्रक्रिया को ही लें. कहने को तो प्रत्येक लेखक अपने लेखन को स्वांत: सुखाय कहता है अर्थात् आत्मतुष्टि को ही संबल मानता है. पर वास्तविकता में ऐसा होता नहीं है, ऐसा मेरा मानना है. सच्चाई तो यह है कि आज का लेखक आत्मतुष्टि के साथ-साथ साहित्यिक जगत में ख्याति प्राप्त करने अथवा अपनी पहचान बनाने के लिए ज़मीन तलाश करने में सक्रिय रहा है. कहीं न कहीं उसके साथ अर्थोपार्जन का सत्य भी जुड़ा हुआ है. एक साहित्यकार महत्त्वाकांक्षी होता ही है. इस तथ्य को स्वीकार किया जाना चाहिए.

मेरी पहली रचना शिमला के सायंकालीन महाविद्यालय की पत्रिका में प्रकाशित हुई. यह रचना एक 'एकांकी' थी, जिसका शीर्षक था 'नौकरी'. अगले ही वर्ष इसी पत्रिका में एक कहानी 'ख़ूनी कौन' प्रकाशित हुई. सत्तर-अस्सी के दशकों में एक दर्ज़न से अधिक कहानियां तत्कालीन लोकप्रिय समाचार पत्रों में प्रकाशित हुईं. कुछ कहानियों पर तो संपादकीय टिप्पणियां अविस्मरणीय रहेंगी. ये समाचार पत्र, सप्ताह में एक बार 'कहानी संस्करण' छापते थे. वह ज़माना

डॉ. सुरेंद्र गुप्त की लघुकथाएं

मां

इधर से धक्का लगता है तो उधर चली जाती हूं, उधर से धक्का लगता है तो तीसरे के पास चली जाती हूं. जब तीसरे से भी धक्का मिलता है तो चक्कर काट कर पहले वाले के पास पहुंच जाती हूं. बस यही दास्तां है मेरी. मैं तीन-तीन बेटों की मां हूं. मैं वही मां हूं जिसने इन तीनों को पाल-पोस कर बड़ा किया. भूखी-प्यासी रही, किंतु इन्हें कभी भूखा नहीं रखा. इनके पिता जी ने भी अपनी ओर से इन्हें बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी. पढ़ाया-लिखाया, ब्याह-शादियां कीं, जो भी बन सका किया. रिटायरमेंट के समय जितना भी पैसा मिला था वह मैंने इनके पिता जी की मृत्यु के बाद सभी बेटे-बेटियों में एक-एक लाख के हिसाब से बांट दिया था. यह रुपया इसीलिए बांट दिया था कि अपने जीते जी पास पड़े पैसे को बांट दूं. मेरी गुज़र तो पेंशन में हो ही जायेगी.

मैंने महसूस किया कि पैसा दे देने के बाद मेरी पूछ बहुत कम रह गयी थी. अब कोई भी मेरी इज़्ज़त नहीं करता था. जिस भी बहू के पास मैं रही उसे उस महीने की पेंशन भी देती रही. फिर भी एक बेटे के बेटे ने कह दिया, 'दादी तू कौन-सा कभी हमें कोई पैसा देती है.' इसीलिए अब मैं गांव के अपने खंडहर हो रहे कच्चे से घर में रह कर बूढ़े हाथों से रोटियां सेंक रही हूं.

और वह रो पड़ा

'पापा.... प्लीज़? धीरे-धीरे चलाओ न... इतनी जल्दी क्या है? घर ही तो जाना है.'

प्रमोद तथा उसके पापा रात्रि में एक विवाह पार्टी से लौट रहे थे. समय रात के ग्यारह के आस-पास रहा होगा. सड़क पर ज़्यादा वाहन भी नहीं थे, बस कोई इक्का-दुक्का स्कूटर अथवा गाड़ी ही आ-जा रही थी. लेकिन पापा ने बेटे की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और गाड़ी पहले की ही तरह दौड़ाते रहे. जब बेटा दोबारा बोला तो वह तिड़क कर बोले — 'कहां तेज़ चला रहा हूं, चुप करके नहीं बैठा जाता क्या?'

यह सुनकर बेटा, चुप हो गया. तभी एक मोड़ आया और जैसे ही उन्होंने गाड़ी मोड़ी वह अपना संतुलन खो बैठी, बस किसी तरह से पलटते-पलटते बची. अब बेटा फिर बोला — 'पापा प्लीज़, आप हटिए, मैं चलाता हूं.'

अगली सीट से उठकर जैसे ही बेटा ड्राइविंग सीट की ओर बढ़ा, तो उसके पापा, उसका हाथ छिटकते हुए गुस्से में तिलमिला कर बोले — 'मैं कोई नया नहीं चला रहा हूं. तूने तो बेटा अभी-अभी चलानी सीखी है, जुम्मा-जुम्मा चार दिन हुए हैं और मुझे तो तीस बरस हो गये गाड़ी चलाते हुए.''

उनके बात करते-करते, एक मोड़ आया और उन्होंने गाड़ी अपने बायें से न काट कर ग़लत तरफ से मोड़ दी और सामने से आते हुए एक स्कूटर सवार से टकरा गयी.

स्कूटर-वाला बुरी तरह से घायल हो गया. घबरा कर उसके पापा ने गाड़ी की स्पीड और तेज़ कर दी, ताकि वह पकड़ में न आ सकें. इस पर बेटा, अपने पापा का तीव्र विरोध करता हुआ बोला — पापा, एक तो आपने गाड़ी ग़लत मोड़ी, फिर इसे भगा कर ले जा रहे हो. रात का समय है, पता नहीं कौन है, कितनी चोट आयी है, और यदि उसे समय पर अस्पताल नहीं पहुंचाया गया तो उसकी जान भी तो जा सकती है.'

वह कुछ बोले नहीं बस गाड़ी को स्पीड से खींचते रहे.

'पापा, आप कर क्या रहे हो, उसकी ज़िंदगी के लिए हमें तुरंत उसे अस्पताल पहुंचाना चाहिए. एक तो हमारी ग़लती, दूसरे हम उसका इलाज़ भी न करवायें. रोहित आक्रोश भरे स्वर में बोला था.

उसके पापा, उसे झिड़कते हुए बोले — 'बेटा, तुम समझते क्यों नहीं, हम पर केस तो बनेगा ही, और अगर उसकी डेथ ही हो गयी तो .... तो कुछ भी हो सकता है, हमें जेल भी जाना पड़ सकता है. हमारे गाड़ी के काग़ज़ भी पूरे नहीं हैं.

'नहीं पापा, आप यहां बिलकुल ग़लत हो. हमें उसे अस्पताल ज़रूर पहुंचाना चाहिऐ चाहे

उसके लिए हमें कितनी भी बड़ी क़ीमत क्यों न चुकानी पड़े.'

'अरे क्या ग़लत है, क्या ठीक है, मुझे पढ़ाने की ज़रूरत नहीं है, समझे.' उसके पापा, एक-एक शब्द चबाते हुए बोले थे.

'नहीं पापा, आप...' रोहित अभी बोल भी नहीं पाया था कि उसके पापा, बीच में ही रोकते हुए, चिल्ला कर बोले — 'और अधिक बोलने की ज़रूरत नहीं, बस चुप करके बैठा रह.' और इसी बहसा-बहसी में वे घर पहुंच गये थे.

रात्रि में रोहित सो नहीं पाया था. सुबह, अख़बार के स्थानीय संस्करण में जब उसने ख़बर पढ़ी, कि 'प्रीतनगर के रहने वाले एक शख़्स की बाईपास के चौराहे के पास एक्सीडेंट में मौत. मारने वालों का कोई सुराग नहीं.' ख़बर पढ़कर उसकी आंखें भर आयीं और वह फूट-फूट कर रोने लगा.

भूख

रात्रि में बिल्ली के रोने की आवाज़ ने अड़ोस-पड़ोस में घर के लोगों की नींद उड़ा दी थी. सभी कान खड़े करके सुनने की कोशिश कर रहे थे कि यह किस की छत पर है. हर कोई अपने को आश्वस्त कर लेना चाहता था, कि यह कहीं उनके घर की छत पर तो नहीं, क्योंकि बिल्ली या कुत्ते का रोना शुभ नहीं माना जाता, शायद इसीलिए.

तभी पड़ोस में रह रहे शर्मा जी की आवाज़ सुनाई दी. वह बिल्ली को भगाने के लिए डंडे को जोर-जोर से छत पर मार रहे हैं ताकि वह उनकी छत से चली जाये. उसके रोने की आवाज़ बराबर आ रही थी. कुछ ही देर बाद शर्मा जी की आवाज़ बंद हो गयी थी, और बिल्ली के रोने से ऐसा लग रहा था कि अब शायद वह हमारे घर के पिछली ओर खन्ना जी की छत पर चली गयी है. उसका रोना वातावरण को ख़ूब डरावना बना रहा था. उसी समय खन्ना जी के लड़के राहुल का चिल्लाना सुनायी दिया. वह उसे अपनी छत से खदेड़ने का प्रयास कर रहा था. जब तक वह उनके घर की छत से चली नहीं गयी, तब तक वह वहीं छत पर खड़े होकर डंडा बजाता रहा. अब उसके कराहने की आवाज़ बंद हो गयी थी. खन्ना जी का बेटा भी शायद नीचे आ गया था. लेकिन इस बार बिल्ली के रोने की आवाज़ कलेजे को चीरने वाली थी. अब तो ऐसा लगा जैसे वह हमारी ही छत पर आ गयी हो. अपने बिस्तर में पड़े-पड़े ही पत्नी जोर से चिल्लाई — 'सुनो, लगता है बिल्ली अब हमारे घर की छत पर आ गयी है. जल्दी से डंडा लेकर जाओ और उसे अपनी छत से खदेड़ आओ.'

मैं सोचने लगा, हर कोई चाहता है कि बिल्ली उसके घर की छत पर न रोये, चाहे पड़ोसी की छत पर रो ले. अर्थात् जो भी अपशकुन हो उसके साथ न हो पड़ोसी के साथ बेशक कुछ भी घट जाये. मुझे यह सोचकर बहुत अजीब सा लगा. बिल्ली अब भी रोये जा रही थी, तभी पत्नी की आवाज़ फिर सुनाई दी — 'अरे गये नहीं अभी तक.'

'जा रहा हूं.' इतना कह कर मैं रसोई में गया और डिब्बे में बासी रोटी तलाशने लगा. इत्तफ़ाक से उसमें एक रोटी मिल गयी. मैंने ऊपर जाकर बिल्ली को भगाया नहीं. चुपचाप जाकर उस रोटी को छत की मुंडेर पर बैठी काले रंग की बिल्ली के सामने डाल दिया. वह मुझे देख कर भागी नहीं, अपितु डरी हुई-सी, थोड़ा-सा आगे बढ़ी और रोटी को अपने अगले पैर के पंजों के नीचे दबा कर, अपने को अपने भीतर सिकोड़ कर वहीं बैठ गयी. मैं भी वहीं खड़ा रहा. उसकी हीरे सी चमकीली दो आंखें अंधेरे में मुझे बराबर घूर रही थीं. मैं समझ गया जब तक मैं सामने रहूंगा तब तक वह डर के कारण ऐसे ही बैठी रहेगी. मैं वहां से दूर हट गया, और मैंने देखा वह रोटी उठा कर बिना कोई शब्द किये साथ वाले कोठे पर कूद गयी. अब उसका रोना बंद हो गया था.

मैं सीढ़ियां उतरता हुआ सोच रहा था कि भूख तो भूख है, सब को लगती है, छोटे-बड़े, पशु-पक्षी सभी को रुला देती है.

टीवी का ज़माना नहीं था. लोगों को पठन-पाठन का शौक़ हुआ करता था. लोग बस में अथवा गाड़ी में यात्रा करते समय कोई न कोई पत्रिका हाथ में पकड़े रहते. महिलाएं भी घर-गृहस्थी से समय निकालकर रचनाओं का आस्वादन करती थीं. यही कारण था अच्छी रचना पर ढेरों पत्र प्राप्त होते थे. अब तो जैसे समय को समय चुग गया. लगता है,

बस ख़ुद ही लिख रहे हैं, ख़ुद ही पढ़ रहे हैं. अर्थात् साहित्यकार को साहित्यकार ही पढ़ रहे हैं, ऐसा मेरा मानना है लेकिन फिर भी लिखना है, सो लिख रहे हैं.

मेरी पहली लघुकथा तत्कालीन 'सारिका' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी. जिसका साहित्यिक दायरों में जाना-माना नाम था. उन्हीं दिनों अखिल भारतीय लघुकथा प्रतियोगिताओं में भी एक लघुकथा 'बोझ' को द्वितीय तथा 'क़ीमत' को सांत्वना पुरस्कार प्राप्त हुआ था. कथाबिंब में पहली रचना 'युगबोध' शीर्षक से जनवरी-जून २००० में प्रकाशित हुई थी. कहानियां, व्यंग्य तथा लघुकथाएं सरिता, मुक्ता, कांदबिनी, साक्षात्कार, शुभ तारिका, कथाबिंब, हरिगंधा, कथा संसार, प्रेरणा, वीणा, प्राची, पंजाब सौरभ, साहित्य भारती, शब्दशिल्पी, शब्द सरोकार, पंजाब केसरी, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, दैनिक ट्रिब्यून आदि स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में लघुकथाकार सुरेंद्र गुप्त पर एम. फिल. भी की जा चुकी है. एक दर्ज़न के लगभग शोध प्रबंध, पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों की समीक्षाएं (शुभ तारिका, दैनिक ट्रिब्यून आदि) भी नियमित रूप से प्रकाशित होती रहती हैं. आकाशवाणी रोहतक एवं कुरुक्षेत्र से कहानियों, लेखों, व्यंग्य आदि का भी प्रसारण होता रहता है.

अनुवाद की दो पुस्तकें 'प्रकाशचंद्र महलनवीस' तथा 'बाल गंधर्व' का नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशन किया गया. दो लघुकथा संग्रह 'प्रसाद' तथा 'यहां सब चलता है' एवं एक कहानी संग्रह 'छत खुले आसमान की' प्रकाशित हो चुके हैं. हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला द्वारा दो पुस्तकों को सहायता अनुदान भी दिया जा चुका है.

हरियाणा प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन, सिरसा (हरियाणा) तथा पंजाब कला साहित्य अकादमी, जालंधर (पंजाब) द्वारा 'विशिष्ट अकादमी सम्मान' से नवाज़ा जा चुका है. इसके अतिरिक्त भी कई अन्य संस्थाओं ने सम्मानित/पुरस्कृत किया.

रचना को एकदम काग़ज़ पर उतारना और उसे अंतिम रूप देकर छपने के लिए भेज देना, ऐसा मैं नहीं कर पाता. रचना लिख ली, फिर उसे तराशते रहे, काटते-छांटते रहे, फिर अपने किसी साहित्यकार मित्र की शरण में गये. रचना सुनायी, कुछ सुझाव आये, यदि अनुकूल लगे तो ले लिये. इस प्रकार एक-एक रचना को मांजने में, तराशने में काफ़ी वक़्त लग जाता है. जब अपनी संतुष्टि हो जाती है तो ही रचना को कहीं छपने के लिए भेजता हूं.

रचनाकार का सृजन, समाज सापेक्ष होना चाहिए. वह ऐसा कुछ समाज को दे, जो कहीं न कहीं लोकरंजन के दायरे में आता हो और उसकी आत्मा सत्यं, शिवं, सुदंरम् की भावना को प्रतिबिंबित करती हो. रचना समय की आहट से पनपी हो, अथवा कल्पना की मंजूषा से, उसे संप्रेष्य होना ही चाहिए, अर्थात रचना को उद्देश्यपरक होना ही चाहिए. रचना की भावभूमि इतनी सशक्त एवं क्षमतापूर्ण हो जो पाठक को गहरे में जाकर उसकी संवेदना को जगाने का, झकझोरने का और आंदोलित करने का सार्थक प्रयास करे. अत: मेरा प्रयास रहा है कि ऐसी रचनाओं का सृजन करूं जो उद्देश्यपरक हों, संवेदनशील हों, सकारात्मक सोच को उकेरती हों तथा पाठक के मानस पटल पर दस्तक देती हों, एक सुख अथवा तृप्ति का आभास देती हों.

वर्तमान में लिखना-पढ़ना बहुत ही कम हो गया है. बहुत-सा समय घर-परिवार के छोटे-छोटे काम करने में निकल जाता है. यह भी मानने से इनकार नहीं कि आयु के इस मोड़ पर ऊर्जा तथा लेखन आदि का कार्य करने की शक्ति तथा क्षमता में निश्चित रूप से फ़र्क पड़ा है. फिर भी जो अधकचरी रचनाएं डायरियों में बंद पड़ी हैं, इन्हें बीच-बीच में देख लेता हूं, जो ठीक लगती हैं उन्हें अंतिम रूप देने का प्रयास करता हूं. निकट भविष्य में एक व्यंग्य संग्रह तथा एक लघुकथा संग्रह निकालने की योजना है, देखें कब समय का ऊंट करवट लेता है.

यह जीवन, जो प्रभु ने मुझे दिया है, मैं उसके प्रति शुक्रगुज़ार हूं, उस प्रभु का कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूं. परम पिता परमेश्वर ने किसी चीज़ की कमी नहीं रखी. संतोष ही परम धन है. इस उक्ति को जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण मानता हूं. मुझे वह सभी कुछ मिला, जिसका शायद मैं पात्र भी नहीं था. हिंदुत्व और भारतीय संस्कृति में मेरी अटूट श्रद्धा एवं विश्वास है.

आर.एन.-७, महेश नगर,
अंबाला छावनी-१३३००१ (हरि.)
मो. : ९४१६२५०२७९

'गीत का भविष्य हिमालय से ऊंचा है'

✍ निर्मल शुक्ल

'अब तक रही कुंवारी धूप', 'अब है सुर्ख कनेर', 'एक और अरण्य काल', 'नील वनों के पार', और 'नहीं कुछ भी असंभव' नवगीत संग्रहों के सुमधुर रचयिता, 'हिंदी के मनमोहक गीत', 'गीत नवांतर', 'बीसवीं सदी के गीत', 'गीत और गीत', 'शब्दपदी', 'नवगीत : नयी दस्तकें', 'शब्दायन : दृष्टिकोण और प्रतिनिधि', 'धूप के संगमरमर', 'चांदनी-चांदनी', 'उत्तरायण', 'ढाई आखर', 'वंदे मातरम्' , 'काव्य मंजूषा', 'दोहे समकालीन', आदि महत्वपूर्ण समवेत संकलनों में चुने हुए प्रतिनिधि गीत-नवगीत, दोहे संकलित, एवं देश की तमाम लब्ध प्रतिष्ठ पत्र-पत्रिकाओं में जिनकी गीतधारा निरंतर प्रवाहित होती रहती है ऐसे विशिष्ट, वरिष्ठ नवगीतकार के विषय में प्रो. देवेंद्र शर्मा इंद्र जी कहते हैं – प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास की पुण्य-सलिला-त्रिवेणी में अभिस्नात, निर्मल शुक्ल की काव्य-प्रतिभा ने उत्तरोत्तर उत्कर्ष के सोपानों का ऊर्ध्वारोहण किया है.' उनके काव्यगत अवदान पर शोध प्रबंध हेतु अनुसंधान कार्य चल रहा है. 'कथाबिंब' के लिए सुविख्यात नवगीतकार एवं 'उत्तरायण' पत्रिका के संपादक श्री निर्मल शुक्ल से श्रीमती मधु प्रसाद की साक्षात्कार प्रस्तुति.

● दादा, गीतों के माध्यम से आपसे जुड़ने का सुयोग मिला. अपनी लखनऊ यात्रा के दौरान आपसे व्यक्तिगत रूप से मिलने एवं आपके गीत सुनने का सौभाग्य भी मिला. आदरणीय भाभीजी के हाथ का बना भोजन भी ग्रहण करने का मौक़ा मिला. आपकी सरलता और सौहार्द्रता ने मन को गहरे प्रभावित किया. आपका पूरा घर ही गीतों का घर लगा. एक से एक मूल्यवान पुस्तकों का संग्रह है आपके पास. गीत पर चर्चा थोड़ा रुक कर करेंगे. सर्वप्रथम आपके जीवन, आपकी जीवन शैली के विषय में जानना चाहूंगी. क्योंकि बचपन की खट्टी-मीठी यादें कहीं न कहीं गीतों में प्रवेश कर ही जाती हैं.

मधुजी! गीत-साहित्य कविता की सर्वाधिक लोकप्रिय सूक्ष्म विधा है. गीत काव्य की अपनी एक समृद्ध परंपरा रही है. कविता तो अनुभूति से व्यक्ति तक की यात्रा है. इसी यात्रा के बीच से गुज़रते हुए मैं और मेरा परिवार दोनों ही अब इसका एक हिस्सा बन चुके हैं. घर में लगभग तीन-चार हज़ार पुस्तकें, अनगिनत पत्र-पत्रिकाएं, विभिन्न प्रकार की अन्य प्रकाशित, अप्रकाशित रचनाओं आदि का संग्रह धीरे-धीरे बढ़ता ही जा रहा है. मैं समझता हूं कि यह मेरा ही नहीं बल्कि हर उस व्यक्ति का अनुभव है जो अपने कार्य से संबंधित हर प्रकार की साम्रगी अपने ही क़रीब रखना चाहता है. हां! संपादन क्षेत्र से भी जुड़ा होने के नाते मेरे पास कुछ ज़्यादा ही सामग्री है. यह सब कुछ मेरे जीने का अर्थ है, पाथेय है. बचपन की यादों के संबंध में जो बात आपने उठायी है उसके लिए मुझे यही कहना है कि मन-मस्तिष्क में आज भी बाल सुलभ यादों का सिलसिला कभी-कभी कौंध जाता है. मुझे भली-भांति याद है कि साहित्य से मेरा नाता वर्ष १९६४ में तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के देहावसान से उत्पन्न हुई संवेदना के कारण जुड़ा, और एक गीत रचना हुई, जिसे मैं अपनी प्रथम गीत रचना ही कहूंगा. एक शिक्षक को जब मैंने वह रचना दिखायी तो उन्होंने आगे इसी प्रकार लिखने हेतु प्रोत्साहित किया. अन्य बालकों की भांति ही बालमन की चंचलताएं, सूक्ष्म ग्राह्यता मेरे भीतर भी थी. यही नवोन्मेष अन्वेषणात्मक दृष्टि मुझे आज भी मेरे कार्यक्षेत्र में नयी दिशा देती है.

● दादा, भारतीय स्टेट बैंक में कार्यरत रहते हुए, गिनतियों से खेलते हुए गीतों ने कब दस्तक दी एक बैंक अधिकारी के मन में?

वर्ष १९७३ में, मधुजी! मैं घर से ४०० कि.मी. दूर, भारतीय स्टेट बैंक की एटा जिले की तहसील जलेसर

३ फरवरी १९४८,
ग्राम-पूरब गांव, बक्शी का तालाब, जि. लखनऊ.

: लेखन :

१९७१ से गीत, नवगीत, दोहा, ग़ज़ल, गद्य व पद्य में समान रूप से लेखन.

: प्रकाशित :

अब तक रही कुंवारी धूप (नवगीत संग्रह), अब है सुर्ख कनेर, एक और अरण्य काल, नहीं कुछ भी असंभव, नील वनों के पास (गीत-नवगीत सं.); भोजपत्र के घाव (नवगीत संग्रह).

: संपादन :

'उत्तरायण' गीत-नवगीत को समर्पित साहित्यिक पत्रिका का डेढ़ दशक से अधिक समय से संपादन;
'शब्दपदी' : अनुभूति एवं अभिव्यक्ति, नवगीत : नयी दस्तकें, गीत नवगीत पर शोध कार्य
'शब्दायन' : दृष्टिकोण एवं प्रतिनिधि, किरनों की चिट्ठियां, नवगीत : एक परिसंवाद आदि समवेत संकलनों का संपादन.

: अन्य :

गीत और गीत, बीसवीं सदी के श्रेष्ठ गीत, हिंदी के मनमोहक गीत, काव्य मंजूषा, वंदे मातरम, गीत नवांतर, धूप के संगमरमर, दोहे समकालीन, उत्तरायण, शब्दपदी, चांदनी-चांदनी, ढाई आखर, शब्दायन, नवगीत के नये प्रतिमान, गीत वसुधा, दोहे समकालीन आदि महत्वपूर्ण समवेत काव्य संकलनों में चुने हुए प्रतिनिधि गीत, नवगीत, दोहे संकलित, हिंदी की प्राय: सभी लब्ध प्रतिष्ठ पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी-केंद्र लखनऊ, दूरदर्शन केंद्र हिसार, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक मंचों आदि के माध्यम से रचनाओं का प्रकाशन एवं प्रसारण.

: सम्मान एवं उपाधियां :

अनेक संस्थानों व संस्थाओं द्वारा लगभग १६ अलंकरण

: विशेष :

मदुरई विश्वविद्यालय, ग्वालियर विश्वविद्यालय तथा कानपुर विश्वविद्यालय द्वारा निर्मल शुक्ल व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर तीन लघु शोध (एम. फिल.), ग्वालियर विश्वविद्यालय द्वारा शोध प्रबंध 'अपरिहार्य' पत्रिका के अतिथि संपादक.

: अन्य :

उत्तरायण संस्थान की साहित्य यात्रा में हिंदी के प्रचार प्रसार, विशेष रूप से गीत के वैशिष्ट्य व पुनर्स्थापना हेतु तन-मन-धन से १९९४ से संकल्परत.

:संप्रति :

भारतीय स्टेट बैंक से सेवानिवृत्त के पश्चात स्वतंत्र लेखन.

'उत्तरायण', के-३९७ आशियाना कॉलोनी, लखनऊ-२२६०१२
मो. ९८३९८२५०६२, ९४५०४४८४१५

शाखा में सेवारत हुआ. वहीं एक साहित्यिक मंच पर प्रसिद्ध गीतकार श्री सोम ठाकुर के सम्मान में आयोजित कार्यक्रम में प्रथम बार कविता पाठ (गीत) पढ़ने का सौभाग्य मिला. बैंक की गणितीय कार्यप्रणाली के बीच कार्य करते, स्थानांतरणों एवं प्रवासों के मध्य सृजन में अड़चनें ही रहीं, सब कुछ बंद-सा हो गया. वर्ष १९८६ में मैं प्रोन्नति पर रायबरेली आया वहां के अन्य कवि वृंदों से घनिष्ठता होने में देर न लगी. वहां की साहित्य उर्वरा धरती पर काव्य सृजन की गतिविधियां सहसा तीव्रतर हो गयीं. इसी सबके चलते मित्रों के सहयोग से १९९४ में 'उत्तरायण साहित्य संस्थान' की नींव डाली, और उसी के तत्वावधान में मुख्य पत्रिका 'उत्तरायण' जो गीत विधा को पूर्णतया समर्पित है, का प्रकाशन आरंभ किया. आज यह पत्रिका गीत-विधा की राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं की श्रेणी में गिनी जाती है. स्थिति, स्थान आदि के प्रभाव के कारण मेरे कवि-मन को पुन: नवजीवन मिला. अंततोगत्वा मेरे पीछे मुड़कर देखने का समय कब निकल गया मुझे ज्ञात नहीं.

● **गीत-नवगीत की चर्चा ख़ूब हो रही है आजकल. नवगीत पर आपके द्वारा संपादित 'शब्दपदी', 'नवगीत : नयी दस्तकें' एवं 'शब्दायन' में प्रचुर मात्रा में चर्चा हुई है. आप क्या कहते हैं गीत की दशा एवं उसके पंख पसारते स्वरूप पर?**

पूरी तरह से छांदस विधा की स्वांत: सुखाय गीत-

पत्रिका के संपादन से मेरे जुड़ने के कारण ही आज आप मेरा साक्षात्कार ले रही हैं. 'शब्दपदी', 'नवगीत : नयी दस्तकें', एवं 'शब्दायन' जैसे महत्वपूर्ण शोधात्मक समवेत संकलनों के माध्यम से, गीत-नवगीत से जुड़े देश के अधिकाधिक रचनाकारों की रचनाएं और उनके संपुष्ट विचारों को पढ़ने, सोचने, समझने तथा छापने का भी अवसर मिला. इसी दौरान मुझे गीत तथा उसके नये संस्करण नवगीत पर लिखे गये विभिन्न विषयक आलेखों तथा विधागत उद्धरित गद्यात्मक टिप्पणियों, महत्वपूर्ण संकलनों-संग्रहों के बीच से भी गुज़रना पड़ा. नवगीत तक गीत को पहुंचने में समकालीनता का बहुत बड़ा योगदान है. नवगीत इसी सदी की काव्य देन है. कतिपय विद्वान इसे निराला में ढूंढ़ते हैं. इस यात्रा में गीत को कई पड़ावों, कई वादों तथा कई कालों से गुज़रना पड़ा है. अब गीत की अपनी प्रतिष्ठा है. गीत अमर है. नयी भंगिमाएं नवगीत की यात्रा को पूरी तरह से प्रशस्त करती जा रही हैं. उसे यहां तक पहुंचाने में विशिष्ट रचनाकारों के साथ, मधुजी! आप जैसी कर्मठ और सधे हुए हाथों की, कलमकारों की महत्वपूर्ण भूमिका है. जिसे किसी प्रकार नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता. गीत का भविष्य तो हिमालय से भी ऊंचा तथा उसकी धवलता से अधिक रश्मिल है. बस आवश्यकता इस बात की है कि उसकी अजस्र रश्मियों को गतिमान, ऊर्जावान बनाये रखने के लिए सतत प्रयासरत रहा जाये.

● आप नवगीत रचनाकारों में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं. आपका समकालीन या पूर्व के गीतकारों से जुड़ाव रहा ही होगा. क्या कहना चाहेंगे उनके व्यक्तित्व या कृतित्व के विषय में?

इस क्षेत्र में कार्यरत रहते हुए मुझे लगभग ४०-४५ वर्ष हो चुके हैं. इस काल में मुझे देश के मूर्धन्य साहित्यकारों, प्रतिष्ठित पत्रकारों, समीक्षकों, समालोचकों, भाषाविदों, श्रेष्ठ काव्य मनीषियों एवं उनके कृत-कृत्यों, साहित्यिक योगदान आदि को विभिन्न माध्यमों से अति निकटता से देखने, जानने–पहचाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. उनके विचार विनियम तथा उनके सान्निध्य का अवसर मिला है. स्वातंत्र्योत्तर गीति परंपरा से लेकर आज तक के जितने भी रचनाकारों से अब तक मिला हूं सभी में जीवन शैली से लेकर उनके कृतित्व तक अपनी-अपनी विशिष्टताएं हैं. विविध गीत शैलियों को परस्पर नये-नये शैल्पिक धरातल पर नयी-नयी भूमिकाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है. आज गीत अपने कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से नित नव अंकुरण लेता जा रहा है. संवेदना की अनुभूति, गीत-नवगीत के सांचे में रागात्मक और लयात्मक होकर ही ढलती है, ढलेगी. नवगीत की उपलब्धियां उसके वैशिष्ट्य के माध्यम से सदैव रेखांकित रहेंगी.

● जीवन संघर्षों की एक ऐसी पोटली है जो खुले तो समस्या, न खुले तो व्यक्ति या व्यक्तित्व का परिष्कार या प्रक्षालन अपूर्ण रहता है. आपकी जीवन यात्रा कैसी रही?

जीवन संघर्ष या जीवन यात्रा किसी व्यक्ति की पारिवारिक संरचना और प्रारब्ध पर निर्भर करती है. मैं एक मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मा अपने सात भाई-बहनों में सबसे बड़ा हूं. एक बड़े परिवार के पिता के रूप में मेरे बाबूजी ने हम सभी की शिक्षा-दीक्षा और प्रगति पर पूरा ध्यान दिया. किसी कविता की तरह सत्य पर न झुकनेवाले, मृदुल, किंतु अनुशासन प्रिय बाबूजी का प्रयोजन संघर्षरत जीवन की त्रासदी को सरलीकृत करके परिवार को हर प्रकार से संतुष्ट रखना था. इन्हीं परिस्थितियों में मेरे कविमन की बात की जाये तो, मैंने भोगे गये उन क्षणों के महत्व और उनकी सत्ता को सहर्ष स्वीकार किया. उन क्षणों का यह निरंतर क्रम ही अब मेरा मार्गदर्शन करते हुए जीवन को गति एवं ज़मीन पर खड़े रहने की शक्ति प्रदान करता रहता है.

● जीवन यात्रा, गीत से कब और कैसे जुड़ी? क्या था जिसने आपको गीत यात्रा की ओर आकर्षित किया? या कौन था?

गीत-संगीत की लयात्मकता मुझे अपने स्मृति शेष बाबूजी स्व. राम बिहारी शुक्ल की मधुर गुनगुनाहट से प्राप्त हुई. इसे मैं यों कह लूं कि परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में मेरी धर्मिता के प्रेरणा स्त्रोत मेरे बाबूजी ही रहे. बचपन से उनका भजनों एवं रामायण पाठ करने का मधुर स्वर नाद बनकर मेरे अंतर में रच-बस गया. हो न हो वही आज तक मुझे गीत लिखने में सहायक रहा है.

● आपने लेखन, संपादन, प्रकाशन सारे कठिन कार्य गीतों का हरापन, उर्वरता, मिठास और सार्थकता बनाये रखते हुए किया. यह कठिन यात्रा किस प्रकार होती रही है. कहीं कोई विघ्न, रुकावट या

कोई पड़ाव?

विधागत लेखन में, मधुजी!, रमते-रमाते एक जागरूक रचनाकार के लिए प्रत्येक क्षण ही सर्जनात्मक हुआ करता है जो सर्वप्रथम उसकी चेतना में एक धुंधला आकार ग्रहण करता है, तत्पश्चात लेखनी से उतरकर एक रचना का रूप धारण करता है. लेखक तो निरंतर एक तलाश में रहता है, एक खोज करता रहता है. सृजन की दिशा में उसकी सक्रियता एवं स्फूर्ति उसे सदैव आशान्वित करती रहती है. उसके हौसले को कभी पस्त नहीं होने देती. सीखने-समझने के लिए किसी विशेष अवस्था या उम्र की आवश्यकता नहीं होती है. इसी कारण मैंने अपनी रचनाधर्मिता के साथ ही 'उत्तरायण' पत्रिका का संपादन भी चुना. यह संपादन का क्षेत्र मेरे लिए नया था, किंतु गीत-रचना के साथ-साथ इसे भी शिरोधार्य किया. सफल रहा या नहीं यह तो आप लोगों का विषय है. मैं तो केवल गीत को उत्कर्ष तक पहुंचानेवालों के साथ ही खड़ा होना चाहता हूं. इस स्तर पर मैं आज भी कोई कसर नहीं रखना चाहता. हां! कई व्यवधान आते रहे, चुनौतियां भी मिलती रहीं. पत्रिका बंद होने की कगार पर कई बार पहुंच गयी, लेकिन हार न मानते हुए साहस, श्रम तथा अर्थ आदि जुटाते हुए अपनी पहचान को ज़िंदा रखने का प्रयत्न करता रहता हूं. कुछ समय बाद ही एक पुस्तक-प्रकाशन की स्थापना हो गयी, 'उत्तरायण प्रकाशन' वह भी प्रकाशन के संदर्भ में गुणवत्ता से कोई समझौता न करने के संकल्प के साथ हिंदी, गीत के प्रचार-प्रसार तथा उसके वैशिष्ट्य को एक स्तरीयता प्रदान करने के उद्देश्य में मैं तन-मन-धन से संकल्पित हो चुका हूं. आगे प्रभु इच्छा!

● **आज के मंच, कविता पाठ के विषय में आपके क्या विचार हैं? क्या मंच द्विअर्थी फूहड़ हास्य प्रदर्शन का माध्यम तो नहीं रह गया है? नवगीतकारों, गीतकारों का क्या दायित्व है मंच की गरिमा बरकरार रखने में?**

देखिए मधुजी! स्वतंत्रता के पूर्व मंचीय कविता का स्वरूप आज़ादी की अलख जगाने का कारगर माध्यम था. स्वतंत्रता के पश्चात बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक कविता का लिखित, पठित और मंचीय स्वरूप विभाजित हो गया. इनके बीच की पारस्परिकता लगभग समाप्त होती चली गयी. आधुनिक मंचीय कविता समाज के कथित सांस्कृतिक, साहित्यिक वर्ग के लिए सामाजिक कौतुहल की तरह उपयोग होती है. वह साहित्य-संस्कृति के व्यवसायीकरण की गिरफ़्त में आ चुकी है. सामायिक विषयों, घटनाओं व परिस्थितियों पर तात्कालिक अख़बारी प्रतिक्रिया, मनोरंजक, फूहड़, अश्लील संवाद और अभद्र फिकरेबाजी में लिपटकर एक निरर्थक आभिव्यक्तिक कला प्रदर्शन, हास्य की आड़ लेकर समाज को परोसी जा रही हैं. ऐसे प्रयोजनों में साहित्य की तलाश की बहुत कम संभावनाएं हैं. ऐसी स्थिति में नवगीतकारों या रचनाकारों को बहुत संयत रहने की आवश्यकता है. ऐसे अवसरों पर समय की धड़कन, संघर्षशील जिजीविषा को ध्यान में रखते हुए गीत की समृद्धि को संरक्षण प्रदान करते हुए उसकी शाश्वतता को अनाहत रखना ही होगा. 'जेनुइन' रचनाकार को समाज के बीच एक जागरूक प्रतिनिधि के रूप में श्रेष्ठ प्रकल्पन का संतुलन बनाये रखना होगा. सतही 'मिस मैरिज़्म' से उत्पन्न क्षणिक लोकप्रियता, उन्मादजन्य अति बौद्धिकता बहुत समय तक आत्मीयता का बोध अक्षुण्ण नहीं रख पाते हैं. सच्ची मौलिक सर्जनात्मकता अंततः सराही ही जाती है, स्तरहीनता या उसकी पक्षधरता तो सदैव गड्ढों में ही धकेलती है, दोनों को. साहित्य को भी तथा सर्जक को भी. जहां श्रोताओं और दर्शक के ऊपर मंचीय कविता के द्वारा चढ़ाया हुआ, सुखानुभूति का मुलम्मा उतरते देर नहीं लगती; वहीं सार्थक अभिव्यक्ति अपनी छाप छोड़ जाती है.

● **दादा, आज की युवा पीढ़ी रातों-रात शिखरस्थ होने की होड़ में लगी है. क्या कविता या गीत का शिखर इतना सहज है? क्या संदेश है आपका 'इंस्टैन्ट प्रसिद्धि' के नुस्ख़े के बारे में?**

निःसंदेह मधुजी! व्यक्ति अपनी युवावस्था से गुज़र कर ही एक आयु प्राप्त करता है. किसी रचनाकार का युवा मन रचनाओं के सृजन में इतना मग्न रहता है कि उसे पता ही नहीं चलता कि समय के निकलते हुए उम्र के किस पड़ाव पर आ गया है. कठिन परिश्रम तथा ऊर्जा, स्फूर्ति के समुचित उपयोग से की गयी रचनाधर्मिता पर निश्चित रूप से निखार आता है. वर्तमान पीढ़ी के रचनाकारों को अपने पूर्ववर्ती पीढ़ी की रचनाओं, साहित्य कृत्यों तथा अनुभवों के पारदर्श में जाने-अनजाने गीत धर्मिता के उपकरणों आदि के संबंध में ज्ञानवर्धक ज़रूरी जानकारी मिलती है. समय की महत्ता और विषयगत पारंगतता सभी कुछ अध्ययन-मनन तथा ललक के बिना प्राप्त नहीं किये

जा सकते. फिर कविता का जन्म तो हर प्रकार से पीड़ादायक ही होता है. शायद किसी प्रसव पीड़ा से कम नहीं. शैशवकाल से लेकर चलनेवाली उसकी यात्रा में उसे कई पगडंडियों तथा कई पड़ावों से होकर गुज़रना पड़ता है. यों ही कोई नहीं लिख पाता कि 'मैं शिखर पर हूं' ऐसा लिखने के लिए भी कवि को अपने पचहत्तर वसंत की आहुति देनी पड़ी है. कविता अनुभूति से अभिव्यक्ति तक की यात्रा है, इस यात्रा में समय और व्यवस्था से कोई संवेदनशील व्यक्ति कभी मुक्त नहीं हो पाया है. इस वैज्ञानिक युग के चलते भी अभी कामयाबी का कोई 'शार्टकट' नहीं निर्मित हो पाया है. किंतु एक बात तो बिलकुल सच्ची है कि गीत का भविष्य तो उज्ज्वल ही है और वह भी नयी पीढ़ी के समर्थ हाथों में पूरी तरह से सुरक्षित भी.

● **पांच नवगीत संग्रह, अनेक सहयोगी ग्रंथों तथा 'उत्तरायण' पत्रिका संपादन, गद्य, पद्य में विपुल यात्रा में लेखन किया है आपने. फिर प्रकाशन की ओर झुकाव कैसे और कब से प्रारंभ हुआ? एक साथ इतने सारे दायित्व कैसे निभा रहे हैं? प्रकाशन के कुछ अनुभव बतायें, कैसे योजना बनी, कैसे कार्यान्वयन प्रारंभ हुआ. 'उत्तरायण प्रकाशन' आज एक अच्छा ख़ासा प्रतिष्ठित प्रकाशन बन चुका है. इस अलग हट के योजना का क्या कारण रहा?**

घर-परिवार के सदस्यों का आग्रह और पत्नी-अनुप्रिया के विशेष प्रोत्साहन के कारण गीत लेखन करते-करते ही गीत पत्रिका 'उत्तरायण' को निकालने की योजना बनी. मधुजी, आज यह किसी से छुपा नहीं है कि गीत-नवगीत को आज के हिंदी इतिहास में क्या स्थान प्राप्त हुआ है? गीत को अपनी यात्रा में इतना सफर पूरा करने पर भी किसी तथाकथित राष्ट्रीय पत्रिका में एक स्थान या सम्मानजनक स्थिति आज भी नहीं मिल सकी है. यह जानते हुए कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, मैंने गीत के वर्चस्व को कायम रखने तथा इसके प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से 'उत्तरायण' नामक मंच की स्थापना करने का प्रण लिया. पूरी तरह से गीत-नवगीत एवं तत्संबंधित मूल्यवान सामग्री को 'उत्तरायण' पत्रिका के माध्यम से सुधी पाठकों-सर्जकों के सम्मुख स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत करने का कार्य किया. मेरी सेवानिवृत्ति के पश्चात मुझे यह कार्य और भी रुचिकर लगने लगा. मैं अब इसे अधिक समय दे पाता था. इसी प्रेरणा के चलते ही कालांतर में पुस्तक प्रकाशन की योजना भी बनी. जहां सम्मानित रचनाकारों की सम्मानित पांडुलिपियां प्रकाशित कर अच्छी पुस्तकों के रूप में पाठकों को पहुंचाया जा सके जो सर्वप्रकारेण गुणवत्ता में अव्वल हों. अब तक देश के विशिष्ट प्रतिष्ठित रचनाकारों के कई महत्वपूर्ण संकलन, शोधग्रंथ — 'शब्दपदी', 'शब्दायन' जैसे ऐतिहासिक महत्व के शोधात्मक समवेत संकलन, उपन्यास, कहानी संग्रह, दोहा संग्रह, ग़जल संग्रह, निबंध, नाटक, अभिनंदन ग्रंथ, व्यंग्य संग्रह, कविता संग्रह सहित गीत-नवगीत के अभूतपूर्व संकलनों आदि की अनेक पुस्तकें प्रकशित हो चुकी हैं. उत्तरायण प्रकाशन के सभी कार्य नितांत मेरी निजी देखरेख में ही किये जाते हैं. इस कार्य में मेरा श्रम मुझे मेरे सेवानिवृत्ति के क्षणों में आत्मसंतुष्टि प्रदान करता है. ऐसा करके मैं निश्चित रूप से स्वस्थ चुस्त, दुरुस्त महसूस करता हूं.

● **चलते-चलते एक प्रश्न और... दादा, अनेक**

ग़ज़ल

✍ **शरीफ़ कुरेशी**

सब की सुनते हैं मगर लब नहीं खोला करते /
तेरे दीवाने किसी से नहीं बोला करते //
होके आज़ाद परिंदों पे थकन टूट पड़ी /
कैसी परवाज़ कि पर भी नहीं तोला करते //
बेरुख़ी से न करो बात, बुरी लगती है /
मीठी आवाज़ में तल्ख़ी नहीं घोला करते //
झूठ इंसाफ़ की कुर्सी पे यहां बैठा है /
यह अदालत है यहां सच नहीं बोला करते //
आबरू लूटने वालों से भिखारी अच्छे /
अपने हाथों से जो मोती नहीं रोला करते //

१/९१, भूसामंडी,
फ़तेहगढ़ (उ. प्र.)-२०९६०१.
मो.: ९०४४६७४७०१

राष्ट्रीय स्तर के सम्मानों से अलंकृत आपका तरल, सरल, सहज व्यक्तित्व है. आपके गीत अवदान पर शोध कार्य हुए हैं और चल रहे हैं. आप स्वयं भी निरंतर लेखन, संपादन, प्रकाशन कार्य करते रहते हैं. जीवन की विसंगतियों से इतनी ऊर्जा, इतना माधुर्य आपने कैसे बचाकर रखा है? क्षण भर की असफलता से क्षण भर में ही अवसाद एवं नैराश्य से भर जानेवाली इस तेज़ रफ़्तार युवा पीढ़ी के लिए क्या संदेश है आपका?

मधुजी ! मैंने आपके एक प्रश्न के उत्तर में पहले ही युवा पीढ़ी की रचनाधर्मिता के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं. फिर भी युवावर्ग को मैं इस साक्षात्कार के माध्यम से, इस आशय से शुभकामनाएं प्रेषित करना चाहूंगा कि गीत-नवगीत का भविष्य उनकी सोद्देश्य रचना धर्मिता के ऊपर ही निर्भर है. वे स्वयं भी अब भली भांति यह बात जानते हैं कि लिखने मात्र से केवल रचनाएं, साहित्य का हिस्सा नहीं बन सकती हैं. आशावान पृष्ठभूमि के लिए रचनात्मकता को नये आयाम देने की राह में आनेवाली चुनौतियों का सामना करना ही होगा. मुख्यधारा में जुड़ने के लिए धरातल पर स्तर को बनाकर रखना होगा. अभीष्ट मानकर नयी पीढ़ी को ऊर्जा का भरपूर सदुपयोग करते हुए कविता के विस्तृत फलक पर अनिवार्य रूप से परिष्कृत रचनात्मक सृष्टि का निर्माण करना ही श्रेयष्कर है.

आपका बहुत-बहुत धन्यवाद! आपकी ही इन पंक्तियों के साथ आपसे विदा ले रही हूं–

फूल जो तुमने बिछाये,
हर उदासी खो गयी ।
आंख को थपकी मिली,
बस देह बेसुध हो गयी ।

मधु प्रसाद
कलोल-महसाणा राजपथ,
चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४
मो. ७९२३२९०८४९

डॉ. रूपसिंह चंदेल को आचार्य निरंजननाथ सम्मान

यह सम्मान राजसमंद के ख्यात साहित्यकार, राजनेता एवं राजस्थान साहित्य अकादमी के पूर्व अध्यक्ष श्री निरंजननाथ आचार्य की स्मृति में ***'आचार्य निरंजननाथ स्मृति सेवा संस्थान'*** के द्वारा साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका ***'संबोधन'*** के माध्यम से दिया जाता है.

राष्ट्रीय स्तर का उक्त सम्मान हिंदी के किसी एक रचनाकार को अलग-अलग विधाओं पर प्रतिवर्ष प्रदान किया जाता है. सम्मान के अंतर्गत प्रशस्ति-पत्र के अतिरिक्त ५१,०००/- रु. (इक्यावन हज़ार रुपए) की नकद राशि, शाल, श्रीफल, एवं स्मृति चिन्ह भेंट किया जाता है.

अब तक यह सम्मान हिंदी के १४ लब्ध प्रतिष्ठित लेखकों की महत्वपूर्ण कृतियों पर दिया जा चुका है.

इस वर्ष १५वां आचार्य निरंजननाथ सम्मान प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं कथाकार डॉ. रुपसिंह चंदेल, दिल्ली को उनके उपन्यास **'गुलाम बादशाह'** पर २५ दिसंबर २०१३ को दिया गया.

बहूमूल्य लेखन और दबंग व्यक्तित्व का धनी : जलीस शरवानी

✍ *सविता बजाज*

(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं.)

बरसों पहले जब राजश्री की हिट फ़िल्म 'प्रतिघात' में मैंने काम किया तो संवाद लिखे एक ख़ूबसूरत, बड़ी-बड़ी नशीली आंखों वाले एक दबंग नौजवान ने जिसकी ऊंची तनी हुई क़दकाठी थी और चलने का बिंदास अंदाज़ बहुत दिलकश और लुभावना था. ठीक ग्रीक ड्रामे में किंग ईडीपस जैसा. लेकिन यह 'प्रतिघात' का किंग कहीं टिकता न था. हमेशा जल्दी में रहता. ज़ाहिर है उस ज़माने में उस संवाद लेखक से मेरी मुलाकात ही न हो सकी. फ़िल्म हिट, तो संवाद लेखक भी हिट. इनका नाम है 'जलीस शरवानी'. मेरी इनसे मिलने की चाहत अधूरी ही रह गयी.

वक़्त का पहिया अपनी तेज़ रफ़्तार से घूमता रहा और फिर जलीस शरवानी का नाम फ़िल्मी दुनिया में ऐसा छाया, ऐसा छाया कि आज तक छाया ही है. लेखन कला के हर क्षेत्र में जलीस साहब ने अपनी जादुई क़लम से इंद्रधनुषी रंग बिखेरे. बड़ी-बड़ी सुपर डुपर फ़िल्में लिखीं, ड्रामे लिखे, उनमें काम भी किया, गाने लिखे, जो बहुत ज़्यादा हिट हुए, फ़िल्मों में अभिनय को गले लगाया, निर्देशन का क्षेत्र भी नहीं छोड़ा. अवार्डों का ढेर लग गया लेकिन मेरी आस जो अधूरी थी, इनसे मिलने की, रू-ब-रू बातें करने की, इन्हें जानने की, स्नेह पाने और अपनापन बटोरने की वह एक लंबे अंतराल के बाद हाल ही में पूरी हुई तो लगा एक ख़्वाब सच हुआ. इनके ऑफ़िस में ही जहां मैं भी कभी-कभी काम करने जाती हूं, इस मुलाकात का सच पाठकों मैं आप तक पहुंचा रही हूं.

मैंने आज तक बहुत सारे बुद्धिजीवी लेखकों को जाना है लेकिन ज़्यादातर कड़के निकले. रोल देने के बहाने मुझे जहांगीर आर्ट गैलरी के रेस्टोरेंट समोवार में बुलाते, बड़ी-बड़ी बात करते और जब खा-पी कर बिल चुकाने का समय आता तो बगलें झांकते. झख मारकर मुझे ही बिल अदा करना पड़ता. समोवार की मालकिन जो मेरी मित्र भी थी मुझे आगाह करती — सवि इन कड़के बुद्धिजीवी लेखकों से दूर रहा करो.

लेकिन जलीस साहब तो किंग थे. आलीशान ए सी गाड़ी के मालिक. बढ़िया रहन-सहन, बढ़िया सिगरेट पीते और बेशक़ीमती रिस्ट वाच पहनते, जिसका पट्टा हमेशा बढ़िया कपड़ों से मैच करता. इस राजा को मालूम है कैसे मायानगरी में राज किया जाता है. मुझे जलीस साहब जैसा दबंग शख़्स कभी नहीं मिला था, जिसमें सही बात को, कहने की ताकत हो. निडरता हो और बिंदास व्यवहार. किसी और राइटर में शायद ही यह ख़ूबियां दिखाई दें.

जलीस शेरवानी साहब !

—अरे रुकिए सविता जी, मेरा नाम जलीस शरवानी है.

लेकिन सब लोग तो आपको शेरवानी के नाम से पुकारते हैं.

मूर्खों को क्या समझाना, शरवानी शब्द सही है. ईरान में एक शहर का यह नाम है. इसलिए मैं अपने नाम के आगे शरवानी शब्द जोड़ता हूं. असल में मेरे दादा-परदादा वहीं के थे.

शरवानी साहब, आप तो लेखन कला के हर क्षेत्र में अव्वल रहे. मेरे हिसाब से आपको लिटरेचर की इतनी ज़्यादा नॉलेज है कि उसे समझना किसी महारथी का ही काम हो सकता है. आप सही मायने में लिटरेचर की एनसाइक्लोपीडिया हैं. आपको यह बहूमल्य खज़ाना कहां से मिला?

२९ दिसंबर १९५४
बिरहरा, कासगंज (उ. प्र.);
बी. ए. (अलीगढ़ मु. वि. वि.)

२० फ़िल्मों का लेखन कार्य, ३२ फ़िल्मों का गीत-लेखन. कई सीरियलों का निर्देशन, गीत व संवाद-लेखन. अनेक पुरस्कारों से अलंकृत. फ़िल्म राइटर्स एसोसिएशन के अध्यक्ष (२००८-२०१२). कई अन्य संस्थाओं के सदस्य.

३०१, लवली होम, वैशालीनगर, जोगेश्वरी (प.), मुंबई-४००१०२

मैं पैदा हुआ उत्तर प्रदेश के एक गांव बिरहरा में जो जिला एटा में है. उसके बाद अलीगढ़ पढ़ने चला गया. वहां अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से बी.ए. किया. उसके बाद अलग से उर्दू में डिग्री ली और बन गया मुअल्लिस यानी कि 'प्रो. इन उर्दू.' चौदह साल की उम्र में हिंदुस्तान की बहुत-सी मैग़ज़ीन्स में छपना शुरू हुआ और १९७९ में बंबई यह सोच कर आया कि बड़े शहर में कोई बड़ा काम करूंगा. हां, मेरा रुझान हिंदी की तरफ़ ज़्यादा था. मेरी एक टीचर ने बताया था कि हिंदी विश्व की एक मात्र भाषा है जिसमें कोई भ्रम नहीं. जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाता है. इसमें कोई बी यू टी, बट और पी यू टी पुट, नहीं होता. शुरू–शुरू में तो थियेटर भी ख़ूब किया.

आप तो हर चीज़ में अव्वल थे तो क्या यहां बंबई में स्ट्रगल नहीं करनी पड़ी. सजी सजाई थाली मिल गयी?

मैं ग्यारह-ग्यारह दिन तक भूखा रहा. विलेपार्ले से प्रभादेवी राजश्री ऑफ़िस जाता, काम की उम्मीद में. दोपहर को वहां खाने की थाली मिलती थी. वहां पर नक्श लायलपुरी जी मिले. उन्होंने मेरे लेख पढ़े थे. बोले — तुम्हें फ़िल्मों में लिखना चाहिए. मैं बोला — सर, मैं सिर पर तेल रखकर दरवाज़े-दरवाज़े कैसे जाऊंगा. मैं तो किसी को जानता तक नहीं. उन्होंने मुझे देवीदत्त से मिलवाया जो दूरदर्शन के लिए सीरियल 'अपने पराये' बना रहे थे. देवी ने ही मुझे राजश्री में मिलवाया और मुझे फ़िल्म 'प्रतिघात' मिली. मेरे संवाद थे, फ़िल्म सुपर डुपर हिट और मैं भी हिट. साजिद-वाजिद मिले जो मुझे कवि के रूप में जानते थे बोले — आप गाने क्यों नहीं लिखते. मैंने 'टिप्स' की फ़िल्म के नौ गाने लिखे जो हिट हुए. बस फिर गाने लिखने भी शुरू कर दिये. हाल ही में फ़िल्म 'दबंग' के गाने हिट हुए.

आप आज भी बरसों बाद हिट हैं. कल, क्या होगा सोचकर डर नहीं लगता?

मैं कभी कल प्लान नहीं करता. न कल मुझे परेशान करता है. मैं हमेशा आज के लिए चिंतित हूं. जो, होता है उसका स्वागत, जो नहीं होता कोई दु:ख नहीं. बचपन से हर क्षेत्र में हीरो रहा, क्रिकेट में भी था. मैं कभी दुखी नहीं होता. मैं मानता हूं जो होना था हुआ, जो होना है, होगा. होनी को रोकने की स्थिति में नहीं हू. जो मेरे हाथ में नहीं, उसकी चिंता क्यों करूं. जब ऊपरवाले से रिश्ता सही हो तो चिंता क्यों.

अचानक कुछ सोचकर मुझे हंसी आ गयी. सोचती हूं पूछूं या नहीं?

तो बोले क्या हुआ, हंसी क्यों? — अरे पूछिए न क्या पूछना है.

अक्सर आप शाम को दस पंद्रह यंग लोगों से घिरे रहते हैं जिसमें लड़कियां ज़्यादा होती हैं. कोई ख़ास वजह? जलीस साहब ठहरे दंबग, निडर बिंदास इंसान बोले –

अरे सविता जी, वे सब मेरे दोस्त हैं. मैं दोस्ती में भी हीरो हूं. हां, लड़कियां ज़्यादा मदद मांगती हैं, क्या करूं.

छेड़े न कोई गर दिशा
हम जैसे फ़कीरों को,
जब चाहे बदल लेंगे
हाथों की लकीरों को ।

(शेष भाग पृष्ठ-५४ पर देखें.)

''जीवन चेतना को रेखांकित करती कहानियां''

✍ अरुण अभिषेक

'कोलाज' (कहानी संग्रह) **: सतीश दुबे**
प्रकाशक - ज्योति प्रकाशन, लोनी बॉर्डर,
गाज़ियाबाद-२०११०२. मू. ३९० रु.

जीवन अनुभूतियों और संवेदनाओं से भरी तमाम क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न मानवीय अनुभवों का एक कोलाज है. यहां जीवन में आक्रमक स्वरूप भी दिखता है. तो दूसरी ओर जीने की सकारात्मक दृष्टि भी सामने आती है. संग्रह की सोलह कहानियां उन तमाम परतों को बड़ी मुस्तैदी से उघेड़ती हैं जहां लेखक अपने पके-अनुभवों से जीवन को नज़दीक से देखते हैं और महसूसते हुए पाठकों से शेयर करते हैं.

संग्रह की पहली कहानी 'अकेली औरत' है जिसमें यथार्थ से टकराती मानवीय संवेदनाओं को उकेरती ज़िंदगी झांकती है. बड़े शहरों में एक आया की ज़िंदगी, जो विभिन्न फ़्लैटों में काम करती हुई, वहां की ज़िंदगी में तो झांकती ही है, साथ ही साथ अपने भीतर भी जीवन के अनुभवों का संसार रचती है. तभी तो गांव से आयी फाल्गुनी के अनुभवों की यह परिपक्वता है कि अपनी पट्टी में दारू की दुकान के खिलाफ़ मुहिम में वह शामिल होती है. साथ ही, बेहतर ज़िंदगी के सपने संजोये वह अपने पति को अपने से दूर जाने से रोकती भी है. जटिल जिजीविषा के मध्य वह स्त्री अकेली नहीं रहना चाहती. यहां परिवार और जीवन के प्रति उसका आत्मविश्लेषण और निर्णय, पाठकों को आकर्षित करता है. इस कड़ी में कहानी 'सप्तशृंगी' पारिवारिक पृष्ठभूमि में उन चरित्रों को सामने लाती है, जिनकी कर्त्तव्यपरायणता से घर की आर्थिक स्थिति से लेकर जीवन की अन्य प्रगति की बुनियादें खड़ी हैं. कहानी की वह किरदार है दादी. यहां ग़ौरतलब है कि 'दादी' का आशय बूढ़े तन से लिया जाता है, लेकिन कहानी में दादी का चरित्र पूरी ऊर्जास्विता के साथ रेखांकित है जिसमें मानस-परत बालमन रजत से भी मूल्यांकित और भावातित होती है. तभी तो वह सप्तशृंगी कहलाती हैं. मूलत: कहानी इसी जीवन-रस को महसूस कराती है. इस दिशा में कहानी 'हलकट' को भी उद्धृत किया जा सकता है. इस कहानी में मन की पीड़ाओं, चिंताओं और अपेक्षाओं के अछूते बिंबों के माध्यम से कहानी के ठस किरदारों का आत्म-संघर्ष सामने आता है. इस तरह यह कहानी अपने परिवेश की यथार्थ अनुभूतियों की ईमानदार अभिव्यक्ति में आम आदमी की पक्षधरता का प्रतिनिधित्व भी करती है.

'ठौर' कहानी में निम्नवर्गीय स्त्री की जिजीविषा और अस्तित्व की तस्वीरें सामने आती हैं. गांव से वह शहर आती है, जहां 'आया' के लिए उनकी 'पूछ' अधिक हो जाती है. यहां दमित-स्त्री की छवि सामने आती है. लेकिन कहानी की पात्रा 'पाइली' इन स्थितियों का हर संभव विरोध करती है.

कॉरपोरेट-ज़िंदगी की चकाचौंध में, जहां बड़े पैकेज़ का लोभ और व्यवसायिक लोकप्रियता से लबालब स्टेटस होता है, वहां इस दौड़ में जीवन की संवेदनाएं चूक जाती हैं. वजह जीवन और रिश्तों को महससूने के अंतरंग क्षण उन चरित्रों के पास चाहकर भी नहीं होते. कहानी 'सकूनी लम्हों के बीच' इस मनोदशा को बख़ूबी व्यक्त करती है. पाठकों का मन तब चटक जाता है कहानी के इन आशयों के साथ, कि 'सब कुछ अर्थहीन, भावनात्मक लगाव से दूर इस ज़िंदगी में धन तो है, लेकिन पच्चीस से तीस वर्ष उम्र की चहक नहीं है.' कहानी 'अपने-अपने द्वीप' भी कॉरपोरेट-संस्कृति में प्रॉपर्टी के पहाड़ खड़े करने में जुटे किरदारों की कहानी है. वे किरदार नेहरा, श्यामली, नैनसी या फिर नेहरा के पिता हैं. नेहरा के पिता मंदिर-मार्केटिंग प्रॉजेक्ट को धन अर्जन हेतु प्लानिंग करते हैं. यह टूटती मर्यादाओं की त्रासदी है जहां ईश्वर के प्रति मनुष्य की भावनाओं को भुनाया जाता है. बावजूद इसके कहानी मानवीय संवेदनाओं और जी लेने

के लम्हें भी तलाशती है. वह है, मिस्टर असीत के माध्यम से, अपने पारिवारिक-रिश्तों से स्नेहपूर्ण संबंधों का आत्म-बोध कहानी 'अंतिम परत' भी इन्हीं विचारधाराओं या फिर जीवन-दृष्टि को चिन्हित करती है. हाईटेक सिटी के ख़र्चों को देखते हुए ज़िंदगी ख़ुद इन्वेस्टमेंट बन जाती है. बड़ा पैकेज़, प्रॉपर्टी और इन्वेस्टमेंट का यह शहर सीमाहीन ख़्वाहिशों से भरा है. लेकिन कमिटमेंट का एक कतरा भी नहीं. अड़तीस वर्ष के पुरुष के साथ श्वेता का जीवन संगनी होने की ख़्वाइश, इन प्रवृतियों की ही उद्घोषणा है. कुछ इसी तरह के ज़िंदगी के पैमाने हैं, कहानी 'गर्द के गुब्बारे' में. बिल्डिंग कंस्ट्रक्शन-व्यवसाय के इर्द-गिर्द जी जाती ज़िंदगी की यह कहानी है. आर्थिक तंगी के बावजूद उनके भी सपने हैं. वे माधवी हों या फिर माधव या उनकी बेटी माया. कहानी के मध्य उप-कहानी भी माला के रूप में सामने आती है.

कहानी 'चेहरे' एक ख़ास और अलग कंटेन्ट पर लिखी गयी है, यानी संविधान का चौथा स्तंभ. कथा नायक यश चौथे स्तंभ का तेज़ तर्रार मीडियाकर्मी है. वह राजनीतिक भ्रष्टाचार के मूल तत्व में जाता है. कहानी के माध्यम से ज़रूरी सवाल सामने आते हैं, जो चुनौती भरे हैं. आख़िर देश बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सामने क्यों घुटने टेकता है? फलस्वरूप, आर्थिक विकास के बजाय राजनैतिक भ्रष्टाचार बढ़ा है. आज यह देश की ज्वलंत समस्या है.

वहीं कहानी 'सीकरी का संत' साहित्यिक सांस्कृतिक संकट को व्यक्त करती है. बेलौस राजनीति के सांस्कृतिक आयोजन की कृत्रिम चमक-धमक में बुद्धिजीवी साहित्यकर्मी शुभदा दीदी के आत्म-सम्मान को ठेस लगना, इसी सांस्कृतिक संकट को व्यक्त करता है. वहीं तथाकथित डॉ. मेहता जैसे किरदार, ऐसे सांस्कृतिक-क्षरण के लिए आत्मग्लानि तो महसूस करते हैं, लेकिन छद्म चरित्र उन्हें फंतासी की ओर ले जाता है, जहां उन्हें यह भान होता है कि 'वे अब अपने नगर नहीं सीकरी के संत हो गये.'

सतीश दुबे की कुछ कहानियां जीवन में विशेष अर्थ ध्वनित करने की क्षमता रखतीं है और हमें आत्म-बोध कराती हैं. कहानी 'एक अंतहीन परिचय' इन्हीं तथ्यों को रेखांकित करती है. बहुत सारे स्टूडेंटस एक ऊंची पढ़ाई या फिर बेहतर कैरियर के लिए शहर आते हैं. इसीं मनोभूमि पर लिखी गयी यह कहानी है. युवा अपने-अपने लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्ध हैं. साथ ही होस्टल में रहनेवाले इन युवाओं के मध्य प्रेमपूर्ण नज़दीकियां हैं तो कहीं सुनहरे सपने भी. कथा-नायिका रूपांशी की मानसिकता उनकी प्रेममय दुनिया का प्रतिनिधित्व करती है. इन आशयों में — 'असल में रौनक व्यक्ति की नहीं उसको दिये जानेवाले प्यार की होती है. ... वह ख़त्म नहीं होगी यथावत रहेगी, किसी दूसरी रूपांशी के रूप में...' कहानी का यह ख़ूबसूरत मैसेज़ पाठकों को आकर्षित करता है. कथाकार के शब्दों में — 'जिसकी धरोहर शिक्षा ही नहीं, संस्कृति और जीवन मूल्य भी है.' कहानी 'विश्लेषी' फेसबुक संस्कृति से प्रभावित चरित्रों की कहानी है. वे किरदार हैं, डॉ. पीयूष पाठक और प्रोफेसर शैशवी जहां जीवन का सकारात्मक स्वरूप धुंध में दिखता है. कहानी 'अंततः' भील-भीलाला समुदाय की है. इस समुदाय से एक लड़की शहर में नौकरी करती है जहां उसका शहर की लंपट-संस्कृति से सामना होता है. लेकिन वह इससे प्रभावित नहीं होती है, बल्कि वह अपने भील समुदाय और संस्कृति के प्रति मुग्ध दिखती है. कहानी आंचलिक संस्कृति के प्रति प्रेममय मिठास और निष्ठा को व्यक्त करती है.

कहानी 'अंतराल', संग्रह की अन्य कहानियों से हटकर है. प्रेमानुभूति में अश्विनी और प्रभांशु के जीवन की अंतःगाथा है, जहां पाठक प्रेम की शाश्वत मिठास को महसूस कर सकते हैं. कहानी की ख़ासियत है कि यह देह-मुक्त प्रेम, चेतना-संपन्न बौद्धिक चरित्रों की गहरी समझदारी को व्यक्त करती है. कथा नायिका अश्विनी की दृष्टि में पुरुष का छद्म, उसे अपने आत्म-सम्मान से तोड़ नहीं सकता है. सच तो यह है कि वह पुरुष में यक़ीन को ढूंढती है और प्रभांशु देह से मुक्त रिश्तों के बावजूद अश्विनी के लिए, जीवन भर के सहारे की शक्ति और आत्मविश्वास बनते हैं. प्रेम का यह अलौकिक सुख, पाठकों को मुग्ध करता है. कहानी 'एन.फॉर.' भी ग़ौरतलब हैं. ज़िंदगी की रफ़्तार, कब किस वक़्त क्या करवट लेगी, यह कोई नहीं जानता है. कहानी मैत्री-मिठास से पूर्ण जीवन के अंतरंग मर्म को छूती है. इनके मध्य ख़ून के रिश्ते तो नहीं, लेकिन मित्रता का घनत्व, वह भी बाप-बेटी की उम्र के मध्य, कहानी की यह ज़िंदादिली पाठकों

को मुग्ध करती है. कहानी का यह दृश्य द्रष्टव्य है - 'नीरजा अपने निजी अनुभवों को प्रमोद जी के साथ ऐसे बांटती मानो वे पिता-तुल्य काका-सा नहीं, उसके हम-उम्र अज़ीज मित्र हों.' कहानी 'फ्रेम का चित्र' अंतस चेतनाओं की अपनी अंतरंग दुनिया है जहां प्रकृति संपदा की अहमियत को जीवन से जोड़कर देखा जाता है. कहानी में, चरक आरोग्यधाम उन्हीं संवेदनाओं और मानवीय स्थापनाओं को व्यक्त करता है. दूसरी ओर, कहानी बाह्य दुनिया से हटकर मन की दुनिया को सर्वोपरि बताती है जहां प्रेमपूर्ण स्मृतियां जीवन को विस्तार देती हैं.

अंत में संग्रह की सभी कहानियों में कथाकार सतीश दुबे मनुष्य-मन के अनगिनत चेहरों की शिनाख़्त करते हैं. कथाकार, बेधक प्रेक्षक दिख पड़ते हैं. वे व्यक्ति की अशक्तता की खोज करते है. वे ज़िंदगी से निपट रहे मनुष्यों के भीतर जीने के विकल्पों को भी तलाश लेते हैं. इनकी रचनाओं का यह सामर्थ्य पाठकों को नयी दृष्टि देता है. कहानीकार के पास समृद्ध भाषा और सधा हुआ शिल्प है. अपनी सहज कहन और अदभुत पठनीयता की वजह से सतीश दुबे की कहानियां उल्लेखनीय हैं.

विवेकानंद कॉलोनी,
पूर्णियां-८५४३०१.
मो. ९८५२८८८५८९

अंधेरे के विरुद्ध एक युद्ध यह भी

✍ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

चाक पर मिट्टी (कहानी-संग्रह) **: डॉ. निरुपमा राय**
प्रकाशक : नमन प्रकाशन, दरियागंज,
नयी दिल्ली-११०००२. **मू.** २५०/-

अकेली लड़ाई की अपनी सीमाएं होती हैं, अपने ख़तरे होते हैं. किंतु कोई किसी की करुण पुकार नहीं सुनता, उसके साथ नहीं चलता तो फिर 'एकला चलो रे' भी एक मूल्यवान विकल्प बन जाता है. डॉ. निरुपमा राय के तीसरे कहानी-संग्रह 'चाक पर मिट्टी' की अन्नपूर्णा ('एक युद्ध यह भी'), चंपा (सुर्खियां), 'कमला' (वध), सुनयना (प्रतिशोध), सरिता (चाभी वाली गुड़िया) निरुपाय होकर यदि अपने फ़ैसले ख़ुद कर रही हैं, अपनी लड़ाई ख़ुद लड़ रही हैं तो इसे अनुचित या निरर्थक नहीं कहा जा सकता है. पुरुष वर्चस्व से आक्रांत सामाजिक व्यवस्था में साहस, स्वावलंबन और संघर्ष के बूते पर अपने अस्तित्व के लिए जूझ रही ये नारियां, निरुपमा राय के परिवर्तन-कामी कथा-विजन की नींब की मजबूत ईंटें हैं.

डॉ. निरुपमा राय की प्राय: सभी कहानियों में जो स्त्रियां हैं, वे अनपढ़ हैं. पूरी तरह से मायके और ससुराल पर निर्भर हैं. कटाक्ष, अपमान, बलात्कार, मार-पीट, आत्मघात, हत्या — कौन–सा हादसा ऐसा है जो इनके जीवन का अभिशाप नहीं है. 'पंचनामा' में अताउल्लाह दिन दहाड़े समीना की इज़्ज़त लूट लेता है और पंचायत जुड़ने पर अंतत: पंच अताउल्लाह का ही साथ देते हैं. 'चांप' में क्रूरता की पराकाष्ठा है. व्यभिचारी विकास पर किसी का वश नहीं चलता. जानकी के अपने घर वाले गर्भवती जानकी की हत्या कर देते हैं. गांव के प्रतिष्ठित लोग इस 'ऑनर किलिंग' को उचित ठहराते हैं. 'अंतर्दाह' कहानी में पति पत्नी को जला कर मार डालता है. दम तोड़ने से पहले वह मां से प्रार्थना करती है कि वे उसकी नन्हीं बच्ची का गला घोंट दें ताकि उसे भविष्य में मां की तरह दहेज लोलुपों के हाथों यंत्रणा न भुगतनी पड़े. 'नयी भोर की प्रतीक्षा' में शांति को पिता सरीखे मुनि काका धोखा देते हैं और वह मुखिया की वासना की शिकार बनती है. जिस समाज में अंगुली का चाम छू जाने से स्त्री की इज़्ज़त चली जाती है, वहां शांति के सामने डूब कर मर जाने के अलावा कोई चारा नहीं बचता. साक्षर और शिक्षित स्त्रियां भी पति की उपेक्षा और स्वार्थप्रियता से पीड़ित हैं. जनप्रतिनिधित्व में महिलाओं के लिए आरक्षण से लगा था कि कुछ बदलेगा लेकिन वहां 'प्रधान-पति', 'विधायक-पति' के द्वारा स्त्री-शोषण का एक नया रूप सामने आता है. 'शेष प्रश्न' में पार्षद-पति सामंती अवमूल्यों का जीता-जागता रूप है, उसकी सार्वजनिक अभिव्यक्ति है — 'औरत सिर्फ़ पांव की जूती ही हो सकती है.' अधिकतर कहानियां इक्कीसवीं सदी में भी औरत के हिस्से में आये अंधेरे का पाठ हैं, पुनर्पाठ हैं. ये समता, समानता, स्वतंत्रता आदि मूल्यों का जाप करने वाली व्यवस्था के मुंह पर करारे तमाचे हैं. नहीं लगता कि नारी-मुक्ति का अंजुरी भर आलोक भी इन पिछड़े अंचलों की दुखियारियों के अंध-कूप तक पहुंचा है. महानगरों में नारी-विमर्श का कारोबार करने वाले लेखकों-

लेखिकाओं के लिए जो देह की स्वतंत्रता को ही नारी की मुक्ति का प्रवेश द्वार मानते हैं, यौनवर्जनाओं से मुक्ति में नारी का उज्ज्वल भविष्य देखते हैं और पति-त्याग तथा गृहत्याग को नारी-संघर्ष की स्वाभाविक परिणति मानते हैं, उनके लिए ग्रामीण अंचल की इन नारियों की त्रासदी शायद ही उल्लेखनीय और विचारणीय हो, लेकिन निरुपमा राय ने इनकी कहानी विश्वसनीय ढंग से, संपूर्ण पक्षधरता के साथ कही है.

कुछ कहानियों में दुखदग्ध चरित्रों ने अपने सम्मान की लड़ाई अकेले ही जिस बहादुरी से लड़ी है, उससे चतुर्दिक अंधेरे में कुछ दिए तो जले ही हैं. 'एक युद्ध यह भी', 'लैंपपोस्ट के नीचे', 'वध', 'आंधी', 'चाक पर मिट्टी' आदि अधिकतर कहानियां 'अकेली स्त्री के संघर्ष की कथा' हैं. अन्नपूर्णा, आद्या, चंपा, दमयंती, बाबा दाय ने भरी जवानी में अपने पति गंवाये हैं, लेकिन विपरीत परिस्थितियों में भी वे यथासंभव जूझती हैं. 'चाक पर मिट्टी' में दमयंती 'मदद के नाम पर चुग्गा' डालकर फंसाने वाले मदन को मुंहतोड़ जबाव देती है, ज़िंदगी भर चाभी वाली गुड़िया की तरह रही सरिता अंतिम क्षणों में मनचाहा निर्णय लेती है. 'वध' की कमली अपनी ही बेटी पर कुदृष्टि डालने वाले पति को मौत की सज़ा देती है और बेटी इस निर्णय में उसके साथ है — 'तूने बिल्कुल ठीक किया मां.' 'महिषासुर वध' का संदर्भ इस कहानी में साभिप्राय है और इसकी व्यंजना है कि पापी को मारना पाप नहीं है. मुखिया की इच्छा के विरुद्ध चुनाव लड़कर जीती बाबा दाय में नारी-अस्मिता के साथ दलित-चेतना भी संश्लिष्ट है. लेखिका ने उसकी विजय को हमेशा कुचली जाने वाली दूब के बहाने से गौरवान्वित किया है. '... बड़ा से बड़ा वृक्ष भी समूल उखड़ कर धूल धूसरित हो जाता है.... घास दूब का कुछ नहीं बिगड़ता.' लेकिन सबसे चमत्कारी संघर्ष और प्रतिवाद है 'एक युद्ध यह भी' की प्रौढ़ अन्नपूर्णा का, जो साइकिल चला कर गली-गली फेरी लगाती है, क्योंकि पति के निधन के बाद परिवार का पेट भरने की ज़िम्मेदारी उसी की है. 'बेटियां पूरे समाज की होती हैं' — अनपढ़ अन्नपूर्णा इस सच तक अनायास पहुंची है और वह 'भाग्य' को दोषी न मानकर अपनी विपन्नता और पीड़ा को 'परीक्षा की घड़ी' मानती है. कोई अचरज नहीं कि नैरेटर की आंखें उसके चेहरे के तेज़ से चौंधियाने लगती हैं. अन्नपूर्णा दमयंती, बाबा दाय, कमली जैसी स्त्रियां अत्यंत देसी ढंग से स्त्री-मुक्ति की वास्तविक एवं समर्थ दिशा की ओर संकेत करती हैं.

इस संग्रह की प्राय: हर कहानी में एक तरह की क़िस्सागोई है, जो रचना को पठनीय बनाती है. और एक तरह की संवेदनात्मक छुअन भी है, जो कई पात्रों को पाठकीय स्मृति में जीवंत और सुरक्षित रखने में सहायक है. नयी धारा के विद्वान संपादक डॉ. शिवनारायण का यह कथन ध्यानाकर्षक है कि कल का कथा-समय निरुपमा राय जैसी मूल्य-निष्ठा वाली लेखिकाओं का होगा.

डी-१३१, रमेश विहार,
ज्ञान सरोवर, अलीगढ़-२०२००१.
मो. : ९८३७००४११३

खामोश खंडहरों की अकथनीय दास्तान

देवी नागरानी

देश विभाजन और नारी त्रासदी : डॉ. लखबीर कौर
प्रकाशक : विकास प्रकाशन, ३११ सी, विश्व बैंक, बर्रा, कानपुर-२०८०२७, **मू.** ५५०/- व ६५०/-

हिंदी साहित्य का भंडार अद्भुत, अनंत और अपरंपार है. समाज अथवा परिवेश से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित साहित्य अपने समय का दस्तावेज़ होता है. जिस परिवर्तनशील दौर में हम हैं, वहां परिवेश का प्रभाव पहले भी रहा, अब भी है. लेखक को प्रामाणिक बनानेवाली चीज़ उसकी संबद्धता है. लेखक का व्यक्तित्व अपने परिवेश से नितांत पृथक कभी नहीं हो सकता. जब लेखन का यथार्थ के साथ पूरी तरह साक्षात्कार होता है तभी जाकर एक उच्च कोटि की साहित्यिक रचना/कृति का जन्म होता है.

आज़ादी के पहले और आज़ादी के दौर में निरंतर साहित्य विकास के रास्तों से गुज़रकर अब प्रत्यक्ष रूप में सामने आया है. आज़ादी के बाद भारत में एक नया परिवर्तन आया. घर की चौखट के भीतर बैठी नारी आज स्वतंत्र रूप से अपने भीतर की संवेदना को, भावनाओं को निर्भीक और बेझिझक स्वर में वाणी दे पाने में सक्षम हुई

है. अपने अंदर की छटपटाहट को व्यक्त करना अब नारी का ध्येय बन गया है. स्वरूप ध्रुव के शब्दों में :

सुलगती हवा में श्वास ले रही हूं दोस्तो,
पत्थर से पत्थर घिस रही हूं दोस्तो.

मानसिक प्रताड़ना के रेखांकित किये हुए चिन्ह वक़्त की दीवारों में चुने जाने के बावजूद रह-रह सिसकियां भरते रहे हैं. अपने वजूद की तलाश में ख़ामोश खंडहरों में भटकते रहे हैं :

ढूंढता फिर रहा हूं मैं, इकबाल अपने आपको,
आप ही गोया मुसाफ़िर, आप ही मंज़िल हूं मैं.

इसी दिशा में विभाजन की विभीषिका से संत्रस्त, उत्पीड़ित, विस्थापित एवं बलात्कृत उन असंख्य नारियों की अतृप्त आत्माओं को जिनके साथ किये गये पाशविक अत्याचार एवं दुराचार के कारण को लेखन का सबब बनाया है.

नारी की उस अक्षम्य और अविस्मरणीय त्रासदी को — ''देश विभाजन और नारी की त्रासदी'' नाम के जुड़वा संकलनों से साहित्य को समृद्ध करती हुई डॉ. लखबीर कौर वर्मा हमारे सामने आयी हैं.

'विभाजन से अमन-चैन का एक नया युग शुरू होगा? एक सपना था जो फकत बंटवारे के दौरान चकनाचूर ही नहीं हुआ बल्कि आज तक उसकी किरचें दिलोदिमाग़ को चीरती हैं. उसी वेदना को आत्मसात किया है लेखिका डॉ. लखबीर वर्मा ने. अपने लेखकीय में वे लिखती हैं — ''भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन की विभीषिका में नारी जाति की जो अवमानना, दानवीय दुर्दमन, क्रूर यौन शोषण और नृशंस संहार किया गया है, वह अक्षम्य और अविस्मरणीय नारी त्रासदी है.''

विभाजन की त्रासदी में प्रतिशोध की मदांधता में प्रतिस्पर्धी गुटों ने खोज-खोज कर स्त्रियों की अस्मत लूटी, उनकी अवमानना की, हत्या की. यह एक, विस्तृत पूरक विषय है जो डॉ. लखबीर ने अपने शोध के लिए चुना है. यह हमें झकझोर कर यह सोचने पर मज़बूर करता है कि इस देश में ही नहीं, विश्व के मानव समुदायों को ऐसी विभीषिकाओं से बचने की दिशा में सजग रहना होगा.

विभाजन के छः दशक बाद भी आज शक्ति संपन्न नारी, त्याग और संवेदना के वशीभूत यातनाएं झेलने को विवश है. सृष्टि के सृजन की सहयोगिनी नारी का संपूर्ण अस्तित्व ही विडंबना से घिरा हुआ है. नारी मन की व्यथा, पीड़ा और अंतर्मन की अकुलाहट को पल-पल महसूस किया जा सकता है. जैसे दुख उसके जीवन का अहम हिस्सा है, देह के ज़रूरी अंग-सा! तभी तो उसका अस्तित्व चीत्कार कर रहा है :

''मैं नारी मात्र हूं नारी ही रहना चाहती हूं,
सीता नहीं होना चाहती.
उसे पसंद नहीं सीता का परीक्षा देना
राम की परीक्षा का विकल्प तब भी था,
और आज भी!''

शोध के लिए चुने गये विषय का कैन्वस इतना विस्तृत है और विषय-वस्तु पाठक को अपने अंदर गहरे धंसने पर मज़बूर करती है और संवेदना के धरातल पर लाकर खड़ा करती है.

भारत विभाजन पर आधारित हिंदी कथा साहित्य के संदर्भ में डॉ. लखबीर, जो ख़ुद अंग्रेज़ी की प्राध्यापिका हैं, ने पहले भाग में १५ उपन्यासों और २३ कहानियों के संदर्भों से नारी मन की प्रताड़ना, नारी जीवन के सूक्ष्म अध्ययन के पश्चात प्रतिपल पराजित संघर्ष का सामाजिक और आर्थिक विश्लेषण का लेखा-जोखा सामने रखा है. उनके अध्ययन की क्षमता नारी मन की आख़िरी तह तक धंसकर, जहां तक दर्द उसे छू सकता है, उस सतह की अद्भुत और अनुपम प्रतिभा पुरजोर प्रभाव के साथ प्रस्तुत की है.

दूसरे भाग में — भारत विभाजन और 'भारतीय कथा साहित्य के संदर्भ में' देश विभाजन के पश्चात नारी त्रासदी को विभिन्न भाषाओं के उपन्यासों और कहानियों में किस प्रकार व्यक्त किया गया है, उसका एक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है. संदर्भ के लिए उपन्यासों और कहानियों का चुनाव अंग्रेज़ी, उर्दू, पंजाबी, सिंधी, बंगला, गुजराती, मराठी एवं डोंगरी आदि भाषाओं से अनुदित सामग्री के आधार पर किया है.

शोध ग्रंथ में इतने विषद और व्यापक शोधकार्य पर सिद्धहस्त अनुवादक एवं समीक्षक डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी ने अपनी प्रस्तावना में लिखा है — 'ऐसे शोध कार्य के लिए बहुत बड़ी हिम्मत, संयम तथा कठोर परिश्रम की ज़रूरत

होती है. डॉ. लखबीर जी में ये सारे गुण मौजूद हैं.'

रचना को प्रामाणिक बनानेवाली चीज़ उसकी संबद्धता है. सिलसिलेवार भाग एक में हिंदी उपन्यासों और कहानियों का सर्वेक्षण, हिंदी कथा साहित्य में नारी जीवन का चित्रण और चित्रित नारी जीवन का अध्ययन है. भाग दो में भारत विभाजन पर आधारित हिंदी, अंग्रेज़ी व अन्य भाषाओं के कथा साहित्य का सर्वेक्षण, नारी जीवन का तुलनात्मक अध्ययन भी है. जिसकी एवज नारी त्रासदी के विविध स्वरूप उभर कर सामने आये हैं.

जीवन की संघर्षमय जटिल परिस्थितियों में विसंगतियों से कई लोग हार मान बैठते हैं, जबकि एक नन्हा दीपक घनघोर अंधकार में भी पराजय नहीं मानता. नारी अपनी लड़ाई ख़ुद लड़ते हुए हर कुचक्र से मुक्त होना चाहती है. वह बख़ूबी जानती है. —

''आज नारी/निरपराध अहिल्या की
शिला न बनेगी/ न बांधेगी पट्टी आंखों पर /
अपने पति का अंधापन बढ़ाने.''

कहा गया है जो साहित्य देश, समाज तथा समूची मानवता को कुछ नहीं देता, उसका सृजन कर काग़ज़ काले-पीले करने का कोई अर्थ नहीं. एक बात और जो इस साहित्य सृजन से उभर कर सामने आयी है. वह यह कि विभाजन की त्रासदी से गुज़री हुई नारी परंपरागत मूल्यों का क्षरण करती हुई नये जीवन मूल्यों के प्रति आगे बढ़ती दिखाई देती है. नारी अस्मिता और नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को लेकर साहित्यिक रचनाएं उनके प्रयासों को पंख देंगी ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें और स्वाभिमान को क़ायम रख सके.

डॉ. लखबीर की यह निष्ठावान कोशिश एकता की गांठ को और मज़बूत करेगी और भारत के साहित्य के विराट स्वरूप में अपना योग्य स्थान पायेगी. इस अद्भुत शोधकार्य के लेखन को संदर्भ ग्रंथ की मानिंद अपने साहित्य कोश में शामिल करना एक सौभाग्य होगा.

९-डी, कॉर्नरव्यू सोसायटी,
१५/३३ रोड, बांद्रा, मुंबई-४०००५०
मो. ९९८७९२८३५८

बाइस्कोप *(शेष भाग)*

जलीस साहब से आजकल अक्सर मिलना होता रहता है. जब भी मिलते प्यार और स्नेह से कहते — हैलो डार्लिंग, कैसी हो. भले से आप मुझसे दस बारह साल छोटे हैं लेकिन इनसे मिलते ही अपनेपन का अहसास होता है. जलीस साहब सही मायने में किंग हैं जो ज़िंदगी के हर पल को जीता है, जीने की कला जानता है तभी तो इनके 'हैलो डार्लिंग' कहते ही मुझमें स्नेह की धारा फूटती है और इनसे मिलना सुखद लगता है.

पो. बॉक्स-१९७४३,
जयराज नगर, बोरिवली (प.),
मुंबई-४०००९२
फ़ोन : ९२२३२०६३५६

'कथाबिंब' का अगला अंक
'कहानी विशेषांक'
(संयुक्तांक : १२५ व १२६)
अतिथि संपादक : डॉ. रुपसिंह चंदेल
देश-विदेश के रचनाकारों की ३० कहानियां तथा
कहानी विधा पर आलेख.
अपनी प्रति अभी से सुरक्षित करवा लें.
: शुल्क :
●वार्षिक : ५० रु. ●त्रैवार्षिक : १२५रु. ●आजीवन : ५०० रु.

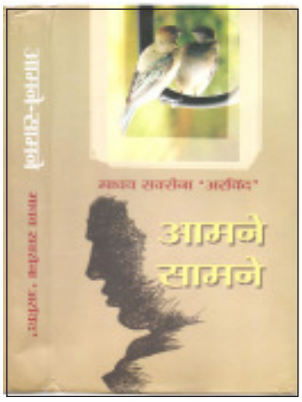

मूल्य : ४०० रु.

संपादक : डॉ. अरविंद

आमने-सामने

("कथाबिंब" के "आमने-सामने" स्तंभ में प्रकाशित 22 पुरुष-रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन.)

: प्रकाशक :
भावना प्रकाशन
१०९ ए, पटपटगंज, दिल्ली-११००९१.
फोन : २२७५६७३४, मो ०९३१२८६९९४७

"कथाबिंब" के लेखकों और पाठकों के लिए २० % छूट.
सीधे प्रकाशक से संपर्क करें.

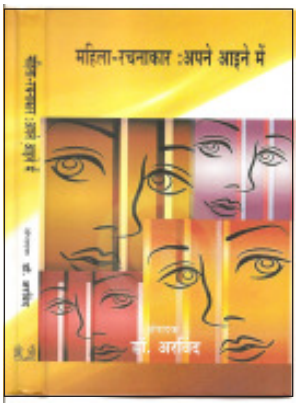

मूल्य : २५० रु.

महिला-रचनाकार : अपने आइने में

("कथाबिंब" के "आमने-सामने" स्तंभ में प्रकाशित सभी महिला-रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन.)

: प्रकाशक :
भारत विद्या निकेतन
१३१, चित्तरंजन एवेन्यू,
प्रथम तल, कोलकाता-७०० ०७३

: एक मात्र वितरक :
मानव प्रकाशन
१३१, चित्तरंजन एवेन्यू,
प्रथम तल, कोलकाता-७०० ०७३

"कथाबिंब" के लेखकों और पाठकों के लिए २० % छूट.
सीधे वितरक से संपर्क करें.
फ़ोन : ०३३-२२६८ ४८२२ व ०९८३१५ ८१४७९.

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१३"

अभिमत-पत्र

वर्ष २०१३ के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक, रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. वर्ष २०१३ के चारों अंक **"कथाबिंब"** की वेबसाइट www.kathabimb.com पर उपलब्ध हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,३,...७, ८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें या ई-मेल करें. आप चाहें तो इस अभिमत-पत्र का प्रयोग करें अथवा मात्र आठ कहानियों का क्रम अलग से एक पोस्टकार्ड पर लिख कर भेज सकते हैं. प्राप्त अभिमतों के आधार पर पिछले वर्षों की तरह ही सर्वश्रेष्ठ कहानी (१००० रु. - एक), श्रेष्ठ कहानी (७५० रु. - दो) तथा उत्तम कहानी (५०० रु. के पांच) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों की भेजी क्रमवार सूची अंतिम सूची से मेल खायेगी उन्हें कथाबिंब की त्रैवार्षिक सदस्यता (१२५ रु.) प्रदान की जायेगी. कथाबिंब ही देश की एकमात्र पत्रिका है जिसने इस तरह का लोकतांत्रिक आयोजन प्रारंभ किया हुआ है. इसकी सफलता इसी में है कि ज़्यादा से ज़्यादा पाठक अपना निष्पक्ष मत व्यक्त करें. पाठकों का सहयोग ही हमारा मुख्य संबल है.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	आपका क्रम
१. **'इश्क वह आतिश है गालिब...'** - सुशांत सुप्रिय	
२. अंतराल - डॉ. स्वाति तिवारी	
३. **अपना-अपना सुख** - मंजुश्री	
४. **यही तो संसार है** - कमल कपूर	
५. **सामगुली** - मदन मोहन प्रसाद	
६. **महाकुंभ** - संतोष श्रीवास्तव	
७. **ज़िंदगी की भंवर में - डॉ. निरुपमा राय**	
८. **ख़ानाबदोश** - वंदना शुक्ल	
९. **हम दुखियारे जनम के** - डॉ. मालती जोशी	
१०. **बुझे रास्तों के पथिक** - अमर स्नेह	
११. **महायोगी** - हरिप्रकाश राठी	
१२. **पंद्रह अगस्त** - शिव प्रताप पाल	
१३. **धूप-छांव** - पुष्पा सक्सेना	
१४. **इंसान होने का अपराध** - डॉ. नीहारिका	
१५. **सारी बेटे...!** - माला वर्मा	
१६. **छोटा-सा एक हादसा ! -** सुरेंद्र 'अंचल'	
१७. **धर्म-अधर्म** - इंदुमति सरकार	
१८. **भीगी हथेलियों का स्पर्श**- सुरभि बेहेरा	
१९. **आदाब** - डॉ. अमिताभ शंकरराय चौधरी	
२०. **संतो की लाड़ो का ब्याह** - अशोक वशिष्ठ	